1.3

भारतीय भाषाओं का शिक्षण

राष्ट्रीय फोकस समूह

का

आधार पत्र

1.3

भारतीय भाषाओं का शिक्षण

राष्ट्रीय फोकस समूह
का
आधार पत्र

विद्ययाऽमृतमश्नुते
एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जून 2009 आषाढ़ 1931

PD 3T NSY

रु 40.00

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल ऑफसैट वर्क्स, 335, खजूर रोड, करोलबाग, नयी दिल्ली 110 005 द्वारा मुद्रित।

ISBN 978-81-7450-969-7

एन सी ई आर टी के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
होस्डेकेरे हेली एक्सटेंशन
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग : *पेय्यटि राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *शिव कुमार*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
संपादक : *नरेश यादव*
उत्पादन : *अरुण चितकारा*

सज्जा एवं आवरण
श्वेता राव

सार-संक्षेप

भाषा नियमों द्वारा नियंत्रित संप्रेषण का माध्यम भर नहीं है, बल्कि यह एक परिघटना है जो एक बड़े स्तर पर हमारी सोच, सत्ता और समता के संदर्भ में हमारे सामाजिक संबंधों को निर्मित करती है। जिस तेज़ी से एक सामान्य शिशु महज़ तीन साल तक की उम्र में ही केवल एक भाषा में नहीं, बल्कि एक से अधिक भाषाओं में भाषिक क्षमता हासिल कर लेता है, उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हम संभवतः अपने साथ भाषा-क्षमता लिए ही जन्म लेते हैं। सभी भाषिक विकास सामाजिक-सांस्कृतिक माध्यम से होते हैं और इस क्रम में प्रत्येक व्यक्ति बहुविध 'रजिस्टर' अभिव्यक्तियों के साथ कई तरह की सामाजिक अंत:क्रियाओं के लिए तैयार होता जाता है। यह बड़ा ही शोचनीय है कि हमारे शिक्षा योजनाकार व भाषा योजनाकार बच्चे में अंतर्निहित इतनी महत्त्वपूर्ण संभावना को नज़रअंदाज़ करते आए हैं। खासकर भारत जैसे देश में जहाँ अधिकांश बच्चे बहुभाषिक संभावना के साथ स्कूल आते हैं, लेकिन स्कूल आना धीरे-धीरे छोड़ देते हैं। बेशक इसके कई कारण हैं लेकिन इनमें से एक कारण है–स्कूल की भाषा, उनके घर एवं पड़ोस की भाषा से खुद को जोड़ नहीं पाती। अधिकांश बच्चे स्कूल पढ़ने और लिखने की शून्य क्षमता के साथ के स्तर पर छोड़ते हैं, यहाँ तक कि अपनी भाषा में भी। इसके लिए कई सामाजिक–राजनीतिक कारण ज़िम्मेदार हैं, जो हमारी पूरी शिक्षा व्यवस्था को ही खोखला किए हुए हैं। लेकिन कुछ अन्य कारण, जो इस न्यूनतम स्तर तक की भाषा क्षमता तक को हासिल नहीं कर पाने के लिए ज़िम्मेदार हैं, वे हैं–भाषा की संरचना एवं प्रकृति के साथ-साथ भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया की समझ का अभाव, खासकर बहुभाषिक संदर्भ में; शिक्षा-योजनाकारों द्वारा पूरी पाठ्यचर्या में ज्ञान-निर्माण में भाषा की भूमिका को नज़रअंदाज़ करना; जाति, नस्ल और जेंडर के साथ-साथ कई तरह के पूर्वाग्रह भाषा में अंतर्निहित होते हैं, इस बात के प्रति उदासीनता, इस पूर्वाग्रह से मुक्त नहीं हो पाना कि भाषा महज़ कविताओं, कहानियों और लेखों से नहीं बल्कि इससे कहीं ज़्यादा को समाहित किए होती है। साथ ही घर एवं पड़ोस में बोली जाने वाली भाषा के संज्ञानात्मक विकास में योगदान की बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हो पाना और इस बात को समझने में असफल होना कि संज्ञान के स्तर पर विकसित भाषा-क्षमता अन्य भाषाओं में आसानी से अनूदित होती रहती है। यह निरंतर स्पष्ट हो रहा है कि जैव विविधता के रूप में हमारी जीवंतता के लिए भाषिक विविधता बहुत महत्त्वपूर्ण है।

हमें यह लगता है कि बच्चे को मातृभाषा में ही शिक्षा प्रदान की जाए और शिक्षकों को कक्षा में बहुभाषी वातावरण का महत्तम उपयोग कर सकने की क्षमता प्रदान की जाए। हाल ही में अध्ययन

शोधों से बहुभाषिक भाषा–क्षमता व शैक्षिक संप्राप्ति में भी सकारात्मक संबंध का पता चला है। साथ ही यह भी पता चला है कि बहुभाषिकता ज़्यादा संज्ञानात्मक लचीलेपन एवं सामाजिक सहिष्णुता को भी जन्म देती है। ज़रूरत है तनाव–मुक्त वातावरण में व्यापक निवेश सुनिश्चित किए जाएँ और जाति, रंग व जेंडर के आधार पर विद्यमान पूर्वाग्रहों को खत्म किया जाए। जब तक शिक्षा–योजनाकार पूरी पाठ्यचर्या में भाषा की बहुआयामी संभावना को नहीं समझेंगे तब तक समता, न्याय व जनतंत्र के निर्धारित लक्ष्य स्वप्न ही बने रहेंगे। अध्याय–10 में दी गई हमारी सिफ़ारिशों को उपरोक्त संदर्भ में और विद्यालय की पाठ्यचर्या में भाषा के संबंध में हमारे प्रस्तावों का संदर्भ (परिशिष्ट–III) में देखा जा सकता है।

राष्ट्रीय फोकस समूह
भारतीय भाषाओं का शिक्षण
के सदस्यों के नाम

प्रो. रमाकांत अग्निहोत्री *(अध्यक्ष)*
भाषाविज्ञान विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110 007

प्रो. डी. पी. पटनायक
बी-188, बारामुंडा कॉम्पलेक्स
भुवनेश्वर, उड़ीसा

प्रो. रमेश कुमार पांडेय
लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत विद्यापीठ
शहीद जीत सिंह मार्ग
नयी दिल्ली-110 016

प्रो. शमीम हनफी
बी-114, ज़ाकिर बाग, ओखला रोड
नयी दिल्ली-110 025

डॉ. अपूर्वानंद
125, शाहपुर जट
नयी दिल्ली-110049

डॉ. मुकुल प्रियदर्शिनी
199, सहयोग अपार्टमेंट
मयूर विहार, फ़ेज-I, दिल्ली-110 091

श्री तारा सिंह अनजान
ए-110, जनता कॉलोनी
नयी दिल्ली-110 027

डॉ. जामिनी देवी
एकेडमिक ऑफ़िसर
बोर्ड ऑफ़ सेकेंडरी एजुकेशन
गुवाहाटी-781 021, असम

डॉ. सिलवेनस लेमारे
ई.एस.ई.एस. प्लस रेसीडेंस
आई.ए.के.आई, टोरी कॅम्पलेक्स, फ्लैट ई-1
कीटिंग रोड, शिलांग-793 001
मेघालय

श्री ए. आर. वेंकटचलपति
मद्रास इंस्टिट्यूट ऑफ़ डेवलपमेंट स्टडीज़
79, सेकंड मेन रोड, गांधीनगर
अदयार, चेन्नई-600 020
तमिलनाडु

डॉ. पी. पी. गिरिधर
सेंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंडियन लैंग्वेजेस
मानस गंगोत्री बी. एम. अस्पताल के सामने,
हंसर रोड, मैसूर-570 006
कर्नाटक

डॉ. चंद्र कांत पाटील
डी-5, रेणुका इंक्लेव, चेतना नगर के पीछे,
नवीन श्रेयानगर औरंगाबाद-431 005
महाराष्ट्र

डॉ. पी. बशीर
अध्यापक, गवर्नमेंट वी. एच. एस. स्कूल
पी. ओ. परावन्ना, वाया थिरूर
ज़िला-मालापुरम-676 502, केरल

श्री प्रहलाद रॉय
विनय भवन
शांतिनिकेतन-731 235
पश्चिम बंगाल

प्रो. रामजन्म शर्मा *(सदस्य सचिव)*
विभागाध्यक्ष
भाषा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली-110016

प्रो. के. के. मिश्रा
भाषा विभाग,
एन. सी. ई. आर. टी.
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली-110 016

आमंत्रित सदस्य

प्रो. राजेश सचदेवा
प्रो. एच.आर. दुआ
प्रो. के. एस. राजश्री
डॉ. जेनिफ़र बेयर
प्रो. पी.एन.दत्ता बरुआ
प्रो. जे.सी. शर्मा
मो. नसरुद्दीन खान
डॉ. चंद्रा सदायत
डॉ. लालचंद राम
डॉ. संध्या सिंह
प्रो. बी.एन. पटनायक
डॉ. संध्या साहू
डॉ. पी. वीरप्पन
श्री शोमशेखर
डॉ. पी.आर. हरिनाथ
श्री वी.पेरुमल
श्री कश्यप मनकोडी, और
श्री एन.एच. इटागी

हमारे समिति के सदस्य हमारे केंद्रीय सरोकार से जुड़े तमाम मुद्दों के बारे में बातचीत करने के लिए कई लोगों से मिले। उन सबका नाम यहाँ पर उल्लेख करना संभव नहीं है इसलिए हम उनसे विनम्रतापूर्वक माफ़ी चाहेंगे जिनके नाम जाने/अनजाने छूट गए।

हम डॉ. ए.एल. खन्ना के कृतज्ञ हैं जिन्होंने हमारे आरंभिक प्रारूप को पढ़ने में अपने कई कीमती दिन दिए। हम सेंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंडियन लैंग्वेज़ (सी.आई.आई.एल.) मैसूर के निदेशक प्रो. यू.एन. सिंह के विशिष्ट योगदान के लिए आभार व्यक्त करते हैं। हालाँकि कई कारणों से वे हमारी बैठकों में भाग नहीं ले सके, लेकिन उन्होंने सी.आई.आई.एल. में हमारी दूसरी बैठक के लिए आवश्यक आधारिक संरचना मुहैया कराने में पहल की तथा साथ ही वहीं के विशिष्ट अनुभवी लोगों का एक विशिष्ट दल भी तैयार कर दिया जिसने हमारे साथ भारतीय भाषाओं पर हुई बहसों में सहयोग किया और प्रो. सचदेवा तथा डॉ. गिरिधर के माध्यम से महत्त्वपूर्ण वैचारिक सहयोग दिया।

दिल्ली विश्वविद्यालय, भाषाविज्ञान के विभागाध्यक्ष को धन्यवाद जिन्होंने हमारी कई बैठकों के लिए जगह दी। डॉ. रीमली भट्टाचार्य और डॉ. एच.के. दीवान को विशेष आभार, जिन्होंने महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं जो परिशिष्ट के रूप में इसी आधार पत्र में संकलित हैं।

अन्य लोग जिनसे हमने संवाद किया– प्रो. यमुना और ब्रज कचरू, प्रो. कपिल कपूर, कुमार शहानी, प्रो. कविता पंजाबी, डॉ. जानकी राजन, वसी अहमद, ओम शंकरण, अब्दुर्रज्जाक, वी. परमेश्वरम, रामकृष्णन, वी. के प्रकासन, बिंदु, सजना सुधीर कुमार, मोहनन मन्नाज़ी, विद्याश्री, नम्रता, दीप्ता, राम बिचार पांडे, एन.आर. गोयल, बृज भूषण, जे. एस. राही, जगदीश कौशल, डॉ. अमरीक सिंह पुन्नी, एच.के. शर्मा, बी. सी. कुँवर, डी. हुसेन, डी. एन. बर्मन, अंजली नोरोहना और अन्य।

नसीर अब्दुल हामिद को विशेष धन्यवाद, जिन्होंने रात-रात भर जागकर बड़े ही धैर्य और निष्ठा के साथ दस्तावेज़ की वर्ड प्रोसेसिंग कर इसे यह स्वरूप दिया। अदिति ठाकुर, कॉपी एडीटर, प्रकाशन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. को भी विशेष धन्यवाद जिन्होंने इस आधार पत्र की कॉपी एडिटिंग की।

अनुवाद सहयोग:

1. श्री विजय कुमार झा, पो. बॉक्स-16, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, आर.बी.रोड, पंछला, वर्धा - 442001
2. डॉ. माधवी कुमार, प्रवाचक, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
3. डॉ. कीर्ति कपूर, वरिष्ठ प्रवक्ता, भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली
4. श्री मनोज मोहन, एल.पी-64 डी., पीतमपुरा, दिल्ली-110088
5. डॉ. रंजना अरोड़ा, प्रवाचक, पाठ्यचर्या समूह, एन.सी.ई.आर.टी. नयी दिल्ली

विषय-सूची

1. भाषा की प्रकृति

1.1 भूमिका

अधिकांश लोग भाषा को संप्रेषण का माध्यम मानते हैं। यहाँ तक कि शिक्षक, शिक्षकों के प्रशिक्षक, पाठ्यपुस्तक लेखक, पाठ्यचर्या अभिकल्पक (डिज़ाइनर) व शैक्षणिक योजनाकार तक की यही धारणा है। जबकि शिक्षा में भाषा की भूमिका को ठीक से सराहने के लिए हमें समग्रतावादी दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है। हमें इसके संरचनागत, साहित्यिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सौंदर्यशास्त्रीय पक्षों को महत्त्व देते हुए इसे एक बहु–आयामी स्थिति में रखकर इसकी पड़ताल करनी होगी। सामान्यत: भाषा को शब्द–कोश व कुछ निश्चित वाक्यगत नियमों के मिश्रण के रूप में देखा जाता है – जहाँ यह ध्वनियों, शब्दों व वाक्यों के स्तर पर खास ढंग से नियंत्रित होती है। यह सच है, इसे नकारा नहीं जा सकता। लेकिन यह तसवीर का एक ही पहलू है – भले ही इसका स्वरूप सार्वभौमिक हो।

1.2 भाषा संकाय

हमें यह मालूम होना चाहिए कि सभी बच्चे तीन साल से पहले ही अपनी भाषा के मूल तथा उपतंत्रों से अच्छी तरह से परिचित हो जाते हैं – जिसमें सामाजिक सह–संबंधों के ज़रूरी हिस्से भी शामिल होते हैं अर्थात् (केवल भाषिक ही नहीं बल्कि संप्रेषण की दक्षता भी ग्रहण कर लेते हैं।) एक तीन साल के बच्चे से किसी भी ऐसे विषय पर अच्छी तरह बातचीत की जा सकती है जो उसके संज्ञानात्मक दायरे के अंदर आता हो।

इससे यह पता चलता है कि सामान्यत: एक बच्चा एक सामान्य भाषायी जगत से संपर्क के अतिरिक्त अंतर्निहित भाषायी क्षमता के साथ ही जन्म लेता है (चॉमस्की 1957, 1965, 1986, 1988, 1993)। हकीकत तो यह है कि भाषा सीखने की प्रक्रिया के क्षेत्र में काम करने वाले भाषाविदों के लिए अभी तक यह बात एक पहेली बनी हुई है (इतने कम समय में जगत से बहुत कम संपर्क के बावजूद) आखिर तीन साल का बच्चा कैसे इस जटिल भाषिक तंत्र का विकास कर लेता है? यह जानकारी कि व्यक्ति में एक जन्मजात भाषिक क्षमता होती है दो ज़रूरी शिक्षाशास्त्रीय पहलू सामने रखती है: पर्याप्त अवसर मिले तो बच्चा नयी भाषाओं को आसानी से सीखेगा; शिक्षण का फोकस व्याकरण पर न होकर विषय–वस्तु पर होना चाहिए।

> यह जानकारी कि व्यक्ति में एक जन्मजात भाषिक क्षमता होती है दो शिक्षाशास्त्रीय पहलू सामने रखती है: पर्याप्त अवसर मिले तो बच्चा नयी भाषाओं को आसानी से सीखेगा; और शिक्षण का फोकस व्याकरण पर न होकर विषय–वस्तु पर होना चाहिए।

1.3 भाषा, नियम-संचालित तंत्र के रूप में

भाषा की संरचना का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले भाषाविदों के लिए किसी भाषा का व्याकरण कई उपतंत्रों से बना एक उच्च अमूर्त तंत्र है जिसके कई उपतंत्र भी होते हैं। स्वरों के पैटर्न और स्वर मान के स्तर पर देखें तो विश्व की सभी भाषाएँ लय और संगीत से नज़दीक से जुड़ी हुई हैं। इसी प्रकार सभी भाषाओं में व्यंजनिक और स्वरीय ध्वनियाँ एक क्रम में सुनियोजित होती हैं। अधिकांश भाषाओं की ध्वनियाँ 25–80 तक की संख्या में होती हैं। उनके शब्दों में व्यंजन (कॉन्सोनेंट) और स्वर ध्वनि (वोकेलिक) एक के बाद एक जैसे सी.वी.सी.वी. पैटर्न पाया गया है न कि व्यंजनों और स्वरों के समूहों को एक के बाद एक। उदाहरण के लिए कोई भी भारतीय भाषा या अंग्रेज़ी भी तीन से ज़्यादा व्यंजनों को शब्द के शुरू में नहीं आने देती। तीन के मामले में भी चयन पर प्रतिबंध सा पाया गया है। पहला व्यंजन केवल ‘s’ हो सकता है, दूसरा ‘p’, ‘t’ या ‘k’ और तीसरा ‘y’, ‘r’, ‘l’ या ‘w’ उदाहरण के लिए हिंदी में स्त्री या अंग्रेज़ी में– ‘spring’, ‘street’, ‘squash’, ‘screw’ आदि। शब्दों के स्तर पर छोटे शब्दों को बनाने के तरीके, जो शब्दों के एक समूह को अर्थ व रूप के आधार पर शब्दों के दूसरे

समूह से जोड़ते हैं, वक्ता को धीरे-धीरे अपने शब्द-कोश को विस्तृत करने का अवसर प्रदान करते हैं और उन्हें जीवनभर इस प्रक्रिया को जारी रखने के काबिल भी बनाते हैं। उदाहरण के लिए, हिंदी को ही लीजिए हिंदी में उन पुलिंग बहुवचन शब्दों को बनाने के अपने नियम हैं जिनके अंत में 'आ' आता है। उदाहरण के लिए लड़का के तीन बहुवचन रूप लड़के, लड़कों और लड़को हैं जो लड़का के क्रमश: कर्ताकारक (नॉमिनेटिव), अप्रधान कारक (ऑबलिक) और संबोधन कारक (वोकेटिव) रूप हैं। अब आपको दूसरे ऐसे शब्दों के लिए, जो 'आ' से खत्म होते हैं, के बहुवचन रूप याद करने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। इसी तरह वाक्य के स्तर पर सरल व जटिल वाक्यों के अवयवों के बीच के संबंध नियमों द्वारा निर्धारित होते हैं। उन नियमों की जानकारी वक्ता को हर रोज़ अनेक वाक्य बनाने के काबिल बनाती है। उदाहरण के लिए एक अंग्रेज़ी के वाक्य को लेते हैं।

She goes to school everyday.

इस वाक्य में कुल पाँच शब्द हैं। ये पाँच शब्द (कुल $5 \times 4 \times 3 \times 2 \times 1 = 120$) वाक्यों को जन्म दे सकते हैं। लेकिन मनमाने ढंग से शब्दों के क्रम को नहीं रखा जा सकता। यानी इन 120 वाक्यों में से दो या तीन वाक्य ही मान्य हैं। इसी तरह एक अंग्रेज़ी बोलने वाला बच्चा कैसे समझ लेता है कि पूछने वाले वाक्यों में 'wh' से शुरू होने वाले शब्द पहले आएँगे? जैसे Where is my pen? What is your name? इत्यादि। हिंदी में ये नियम काफ़ी अलग हैं। हिंदी में प्रश्नवाचक वाक्य में प्रश्न पूछने वाले शब्द वहीं रखे जाते हैं – जहाँ उनका जवाब भी जगह ले सकता है। जैसे –

वह घर जा रहा है ? (He is going home.)

वह कहाँ जा रहा है ? (Where is he going?)

हम यहाँ पाते हैं कि प्रश्नवाचक वाक्य में जिस जगह पर 'कहाँ' आया है, वहीं उसका जवाब 'घर' आया है।

किसी समाज में विमर्श का स्तर उपरोक्त नियमों के अलावा कई तरह की भाषिक, समाजशास्त्रीय, धार्मिक और सांस्कृतिक परिपाटियों से तय होता है। भाषा की इस जटिलता के प्रति भारत में प्राचीन काल से ही चेतना रही है उनसे जूझने के भी महत्त्वपूर्ण प्रयास हुए हैं। पाणिनि, कात्यायन, पतंजलि, भर्तृहरि, तुल्काप्पियार, चंद्रकृति, जैनेंद्र, हेमचंद्र आचार्य और कई अन्य का योगदान काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। यह दुर्भाग्य की बात है कि हम भारतीय ज्ञान के इतने महत्त्वपूर्ण पक्ष को नज़रअंदाज करते आए हैं। हम उम्मीद करते हैं कि इस क्षेत्र का वैज्ञानिक अध्ययन करने और भाषा-शिक्षण में इसकी शिक्षाशास्त्रीय संभावनाओं की तलाश के लिए संस्थानों की स्थापना की जाएगी। पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' की तुलना में आज कोई भी आधुनिक विस्तृत व्याकरण कमतर ही ठहरता है। भारतीय परंपरा में भाषा बोलना है (लेखन नहीं); संज्ञान है (महज बातचीत का माध्यम नहीं) और एक रचनावादी तंत्र है मात्र प्रस्तुतीकरण नहीं है। भर्तृहरि के अनुसार, भाषा यथार्थ को गढ़ती है (यानी पहले से ही मौजूद किसी यथार्थ को महज उद्घाटित भर नहीं करती) और ज्ञान इसी से प्राप्त होता है; सिद्धांत निर्माण और उच्चारण (अभिव्यक्ति) के रूप में यह नॉन-पार्टिटिव (संपूर्णतावादी) और नॉन-सिक्वेंसिअल (अक्रमिक) है (कपिल कपूर, पर्सनल कम्युनिकेशन)। भाषा की ऐसी संपूर्णतावादी सोच के निश्चित ही महत्त्वपूर्ण शिक्षाशास्त्रीय निहितार्थ सामने आ सकते हैं।

1.4 वाणी और लेखन

वाणी और लेखन में मूल अंतर यह है कि लिखित भाषा सचेतन स्तर पर देखी जाती है और कालबद्ध होती है; हम कभी भी इस तक पहुँच सकते हैं। वाणी अस्थायी होती है और लिखित भाषा की तुलना में काफ़ी तेज़ी से बदलती रहती है। इसलिए लिखित की एवं वाणी भाषा के बीच के फ़र्क को देखकर हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। भाषा और लिपि के बीच कोई निश्चित संबंध नहीं होता। अंग्रेज़ी भाषा और रोमन लिपि के बीच अथवा हिंदी या संस्कृत तथा देवनागरी के बीच कोई अलंघनीय संबंध नहीं होता है। दरअसल, विश्व की सभी भाषाएँ थोड़े से फेरबदल से एक ही लिपि में लिखी जा सकती हैं और इसी तरह कोई एक भाषा सभी लिपियों में लिखी जा सकती है। भाषा और लिपि के बीच इस तरह के

रिश्ते के बोध का शिक्षाशास्त्रीय महत्त्व है। जो शिक्षक इस संबंध की जानकारी रखते हैं वे प्राय: बच्चों की गलतियों के प्रति अपना रुख बदलकर पढ़ाने की नयी विधियाँ विकसित करते रहते हैं।

> बोली गई भाषा की प्रकृति अस्थायी होती है और लिखित भाषा की तुलना में काफ़ी तेज़ी से बदलती रहती है। इसलिए लिखित व बोली जाने वाली भाषा के बीच के फ़र्क को देखकर हमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। भाषा और लिपि के बीच कोई गहरा संबंध नहीं होता...। जो शिक्षक इस परिघटना की जानकारी रखते हैं वे प्राय: गलतियों के प्रति अपना रुख बदलकर पढ़ाने की नयी विधियाँ विकसित करते रहते हैं।

1.5 भाषा, साहित्य और सौंदर्यशास्त्र

भाषा के कई प्रकार्य हैं जिनकी ओर भाषा-शिक्षण योजनाकारों ने महज़ इशारा भर किया है। भाषा में पूरे संसार को सामने रखने का गुण तो होता ही है लेकिन साथ ही इसमें कई कल्पनापरक तत्व भी मौजूद होते हैं। पद्य, गद्य और नाटक हमारी भाषिक संवेदना को धार प्रदान करने के साथ-साथ हमारे जीवन के सौंदर्यपरक पहलू को समृद्ध करते हैं, साथ ही यह हमारे पढ़ने और लिखने की क्षमता के स्तर को भी ऊँचा उठाते हैं। भाषा साहित्य हास्य विडंबना, कहानी, पैरोडी और कहावतों को भी शामिल किए रहता है जो हमारे दैनंदिन जीवन के बहुत बड़े एवं महत्त्वपूर्ण हिस्से होते हैं और कहीं से भी यह ऐसी स्वायत्त इकाई नहीं होती जो सांसारिक क्रियाकलापों से मुक्त हो (हैबरमास 1996, 1998, 2001)।

टैगोर के शांतिनिकेतन में यह सामान्य सी बात हो गई थी कि विद्यार्थी टैगोर के साथ ही किसी नाटक को पढ़ते, इसे बंगला में अनुवाद करते और फिर मंच पर इसे इसकी पूरी गरिमा के साथ प्रस्तुत कर लोगों तक ले जाते। कोई भी भाषा-शिक्षा नीति इसमें उपस्थित कल्पनापरक, वर्णनात्मक, अधिभौतिक और अलंकारपरक तत्वों को नज़रअंदाज़ करते हुए इसे महज़ किसी सांसारिक उद्देश्य की कार्यसिद्धि हेतु मात्र एक उपकरण के रूप में नहीं ले सकती (मार्क्स 1844)। मनुष्य सुंदरता की प्रशंसा भर करके शांत नहीं रह सकता, बल्कि वह उन नियमों को तलाश करने की भी कोशिश करता है जो सौंदर्यपरक पहलू को निर्धारित/नियंत्रित करते हैं। भाषा के सौंदर्यपरक पहलू की अनुशंसा निश्चित ही भाषिक रचनात्मकता की ओर अग्रसर करेगी न कि शुद्धता बरकरार रखने की ज़िद की ओर। साथ ही यह प्रक्रिया विक्षोभ के बदले संवाद व सहयोग के लिए भी परिस्थिति पैदा करती है। आशा है यह अल्पसंख्यक एवं विलुप्ति के कगार पर खड़ी भाषा के लिए सम्मानजनक रवैया अपनाने की मानसिकता को जन्म देगी। आखिर कोई भी समुदाय अपनी 'वाणी' को विलुप्त होते हुए नहीं देखना चाहेगा।

> भाषा के सौंदर्यपरक पहलू की अनुशंसा निश्चित ही भाषिक रचनात्मकता की ओर अग्रसर करेगी न कि शुद्धता बरकरार रखने की ज़िद की ओर। साथ ही यह प्रक्रिया विक्षोभ के बदले संवाद व सहयोग के लिए भी परिस्थिति पैदा करती है।

1.6 भाषा और समाज

यद्यपि बच्चे जन्मजात भाषिक क्षमता के साथ जन्म लेते हैं तथापि भाषाओं का सीख जाना खास सामाजिक-सांस्कृतिक तथा राजनीतिक संदर्भों में होता है। कौन-सी बात किसे और कहाँ कहनी है, यह प्रत्येक बच्चा सीख जाता है। भाषा अपने आप में ही परिवर्तनशील होती है और अलग-अलग उम्र के समूह द्वारा संदर्भ के अनुसार अलग-अलग ढंग से प्रयुक्त की जाती है (लैबोव 1966, 1972, ट्रडगिल 1974, गुंपर्ज और हाइम्स 1972, गुंपर्ज 1974 हैबरमास 1970, 1996)। भाषिक व्यवहार में यह विविधता बिखरी हुई नहीं है, बल्कि यह भाषा, संप्रेषण, विचार और ज्ञान के तंत्रों को जोड़ती है। जैसा कि

औरोरिन (1977) ने कहा है – "भाषा का अस्तित्व एवं विकास समाज के बाहर नहीं हो सकता। भाषा का विकास हमारी सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक विकास की ज़रूरतों से ही उद्दीप्त होता है, लेकिन इसके विपरीत भी उतना ही सच है अर्थात् भाषा भी उद्दीपन करने वाले इन कारकों को उद्दीप्त करती है। मानव समाज भाषा के बिना नहीं चल सकता क्योंकि यह संप्रेषण का सबसे ज़्यादा शुद्ध और सार्वभौमिक माध्यम है। यह विचारों के निर्माण और अभिव्यक्ति को बनाने और संचारित करने में भी ज़रूरी भूमिका निभाती है।" साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भाषाएँ देश–कालबद्ध जैसी कोई जमी हुई चीज़ें नहीं हैं बल्कि वे लगातार बदलती हुई, व्यवहारों की लचीली व्यवस्था हैं जिन्हें मनुष्य खुद को और अपने आसपास के जगत को समझने के क्रम में सीखता और बदलता रहता है। अकसर भाषाओं को तत्वों के रूप में लिया जाता है और लोग उनके बारे में रूढ़ सी धारणाएँ बना लेते हैं। हमें भाषा के इन दोनों पक्षों का ध्यान रखना होगा।

1.7 भाषा, भाव और अभिप्रेरणा

कोई भी भाषा हो, जब सीखने की बात आती है तब जो सीख रहा होता है उसके भाव/रुख एवं अभिप्रेरणा की भूमिका अहम् हो जाती है। इसी तरह, शिक्षक और माता–पिता/अभिभावक का रवैया व उनकी तरफ़ से मिलने वाला प्रोत्साहन भाषा–सीखने की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है। द्वितीय/विदेशी भाषा सीखने–सिखाने की प्रक्रिया के क्षेत्र में शोध करने वालों ने कई सामाजिक मनोवैज्ञानिक चरों की पहचान की है जो द्वितीय भाषा सीखने की उक्त प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। उनमें से कुछ चर ये हैं: 1. अभिरुचि, 2. बुद्धि, 3. अभिवृत्तियाँ, 4. अभिप्रेरणा व इसकी तीव्रता, 5. सत्तावाद, और 6. मानवजाति केंद्रवाद। लेकिन इन सबमें सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है: अभिवृति एवं अभिप्रेरणा और द्वितीय भाषा सीखने वाले के प्रति शिक्षक का रवैया व माता–पिता/अभिभावक से मिला प्रोत्साहन।

गार्डनर और लैंबर्ट (1972) के अनुसार किसी द्वितीय/विदेशी भाषा को सीखने वाले की अभिप्रेरणा उसकी अभिवृत्ति और इच्छा शक्ति पर निर्भर करती है कि वह उन भाषिक और अभाषिक विशेषताओं के साथ पहचाना जाए जो सामान्यत: लक्ष्य भाषा के बोलने वाले के साथ जुड़ी रहती हैं। उनके अनुसार इस प्रकार का प्रोत्साहनपरक दिशा–निर्देश समाकलित कहलाएगा यदि कोई द्वितीय/विदेशी भाषा को, लक्ष्य भाषा के बोलने वालों के साथ जीवंत संवाद स्थापित करने के लिए सीखे। अन्यथा यदि सीखने का उद्देश्य रोज़गार प्राप्त करना हो या ऐसा ही कोई और साध्य हो तो प्रोत्साहन यांत्रिक कहलाएगा। निष्कर्षत: गार्डनर और लैंबर्ट कहते हैं कि उक्त भाषा सीखने में सफलता कम ही मिलेगी यदि अभिप्रेरणा समाकलित न होकर यांत्रिक होगी।

भारतीय संदर्भ में लक्ष्य भाषा समुदाय तक पहुँचने का एक निश्चित रास्ता नहीं है। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी को ही लें। अंग्रेज़ी भाषी समुदाय के नहीं होने के बावजूद शहरों में अंग्रेज़ी का अच्छा–खासा चलन है। जबकि ग्रामीण और आदिवासी इलाकों में अंग्रेज़ी विदेशी भाषा के रूप में ही ली जाती है। भारतीय भाषाओं के मामले में लक्ष्य मूल भाषी समुदाय तक पहुँच अपेक्षाकृत ज़्यादा सुलभ हो सकती है। विश्व के अनेक भागों में द्वितीय/विदेशी भाषा के सामाजिक, मनोवैज्ञानिक पक्षों पर बहुत शोध हुए हैं। इनमें से अधिकांश शोधार्थियों ने पाया कि द्वितीय/विदेशी भाषा में दक्षता सीखने वाले की अभिवृत्ति व अभिप्रेरणा पर ही ज़्यादा निर्भर करती है। लेकिन गार्डनर और लैंबर्ट की परिकल्पनाओं को समाकलित अभिप्रेरणा, यंत्रीय अभिप्रेरणा की तुलना में ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होती है, बहुत कम सहमति मिली है। (खन्ना और अग्निहोत्री 1982, 84 के सहित) और कई शोधार्थियों ने दिखलाया है कि गार्डनर और लैंबर्ट के सिद्धांत में व्यापकता (सार्वभौमता) का अभाव है। द्वितीय भाषा–दक्षता के नियामकों में उत्साह व अभिवृत्ति ही नहीं, बल्कि कई प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक और जनसांख्यिकीय कारक भी महती भूमिका निभाते हैं। साथ ही विभिन्न भाषाओं पर नियंत्रण, भाषा–प्रयोग की पद्धति, अंग्रेज़ी से परिचय का स्तर, परिवार में अंग्रेज़ी का प्रयोग, स्कूल के

प्रकार, समुदाय का आकार, तनाव का स्तर आदि जैसे कारक भी नज़रअंदाज़ नहीं किए जा सकते हैं।

> ...द्वितीय भाषा-दक्षता में नियामकों में उत्साह व अभिवृत्ति ही नहीं, बल्कि कई प्रकार के सामाजिक, सांस्कृतिक और जनसांख्यिकीय कारक भी हैं। साथ ही विभिन्न भाषाओं पर नियंत्रण, भाषा-प्रयोग की पद्धति, अंग्रेज़ी में परिचय का स्तर, परिवार में अंग्रेज़ी का प्रयोग, स्कूल के प्रकार, समुदाय का आकार, तनाव का स्तर आदि जैसे कारक भी नज़रअंदाज़ नहीं किए जा सकते हैं।

1.8 भाषा और अस्मिता

यह बात साफ़ हो जानी चाहिए कि अभिवृत्ति और अभिप्रेरणा शून्य में जन्म नहीं लेते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने व्यवहार के पैटर्न को उस समुदाय के संदर्भ में ही ढालता है, जिससे वह सामीप्य स्थापित करना चाहता है या महसूस करता है। इस क्रम में वह संप्रेषणात्मक योग्यता भी विकसित करता जाता है, जो उसे औपचारिक से अनौपचारिक भाषा की दुनिया में आवागमन के योग्य बनाती है (ली पेज और टैबुरेट-केलर 1985; लैबोव 1966, 1971)। अक्सर हम अस्मिताओं को परस्पर संघर्षरत पाते हैं। अल्पसंख्यकों के मामले में यह मामला और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। ख़ासकर राष्ट्रीय व विश्व शांति व सामंजस्य के लिए उनकी भाषा और संस्कृति के प्रति संवेदनशील होने की ज़्यादा ज़रूरत हो जाती है। कई अध्ययनों (उदाहरण के लिए फिशमैन 1966, 1978; दास गुप्ता 1970; ब्रास 1974; गाल 1979; विह्टले 1971; डोरिअन 1981; अग्निहोत्री 1979; मुखर्जी 1981; कूपर 1989; वर्मा 1998 और भी कई अन्य) से ज्ञात हुआ है कि कैसे अल्पसंख्यकों से जुड़े मुद्दे भाषा को बनाए रखने, परिपोषित करने या परिवर्तित करने के मामले से जुड़े होते हैं। यदि हम भाषा-शिक्षण के संदर्भ में अस्मिता के प्रश्न पर बात करें (चूँकि भाषा, अस्मिता जनित राजनीति के बोझ को ढोती रही है) तो ज़्यादा उचित होगा यदि हम यह कहें कि यह तादात्म्य स्थापित करने, कभी खत्म न होने वाली, हमेशा अपूर्ण, असमाप्त और खुले सिरे वाली गतिविधियाँ हैं जिसमें मजबूरन या स्वेच्छा से हम सब संलग्न हैं (बॉउमन 2001)।

यदि भाषा किसी की पहचान को सहज बनाती है बजाय इसके जो अस्मिता अस्तित्व में उसकी खोज भर करे तो यह अस्मिता-संकेतकों की व्यवस्था देखने वाली तथा प्रतीकों और यादों के ढेर को वहन करने वाली नहीं रह जाती बल्कि इसकी भूमिका और व्यापक हो जाती है तब यह ऐसी स्प्रिंगबोर्ड हो सकती है, जो हमारे लिए अनेक संभावनाओं की गहराई में गोता लगाने के लिए (लांचिंग पैड) का काम करे।

> यदि भाषा किसी की पहचान को सहज बनाती है बजाय इसके जो अस्मिता अस्तित्व में उसकी खोज भर करे तो यह अस्मिता-संकेतकों की व्यवस्था देखने वाली तथा प्रतीकों और यादों के ढेर को वहन करने वाली नहीं रह जाती बल्कि इसकी भूमिका और व्यापक हो जाती है तब यह ऐसी स्प्रिंगबोर्ड हो सकती है, जो हमारे लिए अनेक संभावनाओं की गहराई में गोता लगाने के लिए (लांचिंग पैड) का काम करे।

1.9 भाषा और सत्ता

इस वास्तविकता के बावजूद कि अमूर्त तंत्र या उपतंत्र के रूप में सभी भाषाएँ एकसमान हैं, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र की और राजनीति विज्ञान जिस जटिल तरीके से भाषा के साथ अन्त:क्रिया करते हैं, वे कुछ भाषाओं को अपेक्षाकृत ज़्यादा सम्मानजनक दर्ज़ा दे जाते हैं और इस तरह सामाजिक-राजनीतिक सत्ता से उनका जुड़ाव होता है। प्राय: अभिजात्य वर्ग के द्वारा प्रयुक्त की गई भाषा ही सत्तावान होती है और मानक का भी दर्ज़ा प्राप्त किए हुए रहती है। सभी व्याकरण, शब्दकोश और अन्य संदर्भ-सामग्री इसी 'मानक' भाषा को आधार मानकर

चलते हैं। यदि भाषा को विज्ञान के दृष्टिकोण से देखें तो भाषाओं के बीच कोई अंतर नहीं होता, चाहे वह 'मानक' भाषा हो, शुद्ध भाषा हो, स्थानीय बोली हो आदि। वैसे भी भाषा को आर्मी और नेवी की बोली (ए डायलेक्ट विद एन आर्मी एंड नेवी) के रूप में परिभाषित किया गया है। वे जिनके पास सत्ता होती है, सुविधावंचित लोगों की भाषाओं के बारे में रूढ़िवादी धारणाएँ बना लेते हैं। जैसा कि चैंबर्स (2003:277) इंगित करती है, "बोलियों पर आधारित रूढ़ियाँ उतनी ही घातक हैं जितनी त्वचा, रंग, धर्म या ऐसे ही किसी अन्य अप्रमाणित लक्षण पर आधारित रूढ़ियाँ, और उनका भी परिणाम एक जैसा होता है।"

किसी भी अन्य कारकों से महत्त्वपूर्ण वे सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक कारक ही हैं जो लोगों को शिक्षा, प्रशासन, न्यायपालिका, मास-मीडिया (जनसंचार) में उपयोग करने के लिए राष्ट्रीय, राजकीय, सह राजकीय आदि भाषाएँ निर्धारित करने की ओर अग्रसर होते हैं। सैद्धांतिक स्तर पर किसी भी भाषा में कुछ भी करना संभव है यहाँ तक कि मानविकी, समाज विज्ञान व विज्ञान में उच्चतर शोधों में भी। इसलिए यह बात साफ़ है कि हाशिए पर अवस्थित या दबे-कुचले तबके की भाषा मजबूत नहीं हो सकती यदि हम उनके समर्थन में संरचनात्मक व्यवस्था न करें जो विविध संदर्भों में उनके प्रयुक्त होने की गारंटी हो। यह भी ध्यान में रखने वाली बात है कि 'मानक' एक निश्चित स्थिरांक नहीं है। सत्ता संबंधों के बदलते समीकरण में 'मानक' का भी चेहरा बदलता रहता है जैसे कि गैर ब्राह्मण तमिल ब्राह्मण की जगह ले लेता है और पुणे मराठी, आधुनिक मुंबइया मराठी के लिए जगह छोड़ देती है।

यदि हम भारत में हुई कुछ महत्त्वपूर्ण परिघटनाओं को लें जैसे—सूफ़ी कविताई, 1857 की क्रांति, आज़ादी की लड़ाई, भारत में नये राज्यों का बनना या दलित साहित्य, जनता की भाषाओं में हम प्रतिरोध के प्रबल स्वरों को अकसर सुनते हैं। वास्तव में यदि कुछ अपवादों को छोड़ दें जैसे औरोरिन (1977), ली (1992), क्रेस (1989), फेअरक्लफ (1992) और क्रेस एवं हॉज (1979) और कुछ अन्य तो एक तरफ भाषा का सत्ता व शोषण के साथ के संबंध और दूसरी तरफ इसका प्रतिरोध व जनतंत्र के साथ संबंध का जो ताना-बाना बना है इसकी पड़ताल नहीं हो पाई है।

1.10 भाषा और जेंडर

जेंडर का मुद्दा आधी नहीं बल्कि पूरी मानवता का मुद्दा है। समय के साथ भाषा ने अपनी बुनावट में कई तत्वों को समाहित कर लिया है जो जेंडर के प्रति रूढ़ियों को लगातार पोषित करती आ रही है। कई अध्ययन (कैमरन 1985, 1995; लैकॉफ 1975, 1990; टैनेन 1990; बटलर 1990 और अन्य) भाषा और जेंडर के संबंध पर ही केंद्रित होकर किए गए हैं। न सिर्फ़ विद्वानों ने, बल्कि भाषाविदों ने भी स्त्री भाषा को 'तुच्छ' व 'मोतियों के हार' की उपमा तो दी है जिससे कोई महत्त्वपूर्ण बात सामने नहीं आती, किंतु वाक्यगत व कोश के स्तर पर अभिव्यक्तियों में जेंडर-पूर्वाग्रह झलक जाते हैं। स्त्री-पुरुष के बीच की बातचीत के सूक्ष्म विश्लेषण से भी ज्ञात हुआ है कि कैसे पुरुष अपनी बात को लादने के लिए भाषिक खेल खेलते हैं।

पुल्लिंग व स्त्रीलिंग के बारे में बनी-बनाई धारणाएँ व्यवहार के स्तर पर पुनर्निर्मित तो होती ही हैं और कई बार शायद अनजाने ही हमारी पाठ्यपुस्तकों द्वारा भी संचरित होती रही हैं। दरअसल, ज्ञान के क्षेत्र में लैंगिक ज्ञान के संरचना के स्तर पर भेदभाव के कारण हानि अब तेज़ी से स्पष्ट होती जा रही है। भाषा, अन्य व्याख्याएँ और दृश्य-विज्ञापन इस तरह के ज्ञान के निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। इसलिए भाषा में इस पक्ष को अति गंभीरतापूर्वक लेने की जरूरत है। यह बात अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गई है कि पाठ्यपुस्तक लेखक और शिक्षक इस तथ्य को स्वीकार करें कि निष्क्रिय व हेय समझी जानी वाली भूमिकाएँ, जिनसे स्त्रियों को स्वभावत: जोड़कर देखा जाता रहा है, सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से निर्मित हैं और इन्हें जितनी जल्दी हो सके नष्ट करने की जरूरत है। स्त्रियों की आवाज़ को पूरी गरिमा के साथ हमारी पाठ्यपुस्तकों व शिक्षण-पद्धति में जगह दी जाए।

> यह बात अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गई है कि पाठ्यपुस्तक लेखक और शिक्षक इस तथ्य को स्वीकार करें कि निष्क्रिय व हेय समझी जानी वाली भूमिकाएँ, जिनसे स्त्रियों को स्वभावत: जोड़कर देखा जाता रहा है, सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से निर्मित हैं और इन्हें जितनी जल्दी हो सके नष्ट करने की जरूरत है।

1.11 भाषा, संस्कृति और सोच

बहुत लंबे समय से भाषा, संस्कृति और सोच के बीच के संबंध का क्षेत्र समाजशास्त्रियों, मानव-विज्ञानियों और भाषाविदों के लिए गंभीर अध्ययन का विषय रहा है। इस बात में तनिक भी शक की गुंजाइश नहीं कि विविध भंगिमाओं, कर्मकांडों और परा-भाषिक अवयवों को अंतर्निहित किए होने के बावजूद भाषा सांस्कृतिक संचार और संज्ञानात्मक संरचना का मुख्य स्रोत है। सामाजिक-व्यवहार के भाषिक व सांस्कृतिक पैटर्न (नमूने) अवचेतन स्तर पर ग्रहण किए जाते हैं और धीरे-धीरे वे हमारी अस्मिता का हिस्सा बन जाते हैं। भाषा की बहुलता और सांस्कृतिक विविधता का इस संदर्भ में अत्यंत महत्त्व है।

भाषा और सोच के बीच का संबंध बहुत जटिल है और यह भाषाविदों, मनोवैज्ञानिकों और संज्ञान-वैज्ञानिकों के लिए एक बड़ी चुनौती के रूप में विद्यमान रहा है। सापिर-होर्फ संकल्पना जोकि एक मजबूत धारणा है, के अनुसार हमारी सोच पूर्णत: भाषिक तंत्र से ही निर्मित होती है: ''प्रत्येक भाषा की पृष्ठभूमि में अवस्थित भाषिक-व्यवस्था ही धारणाओं और कार्यक्रमों को गढ़ती है तथा व्यक्ति के मानसिक क्रियाकलाप के लिए निर्देशन का कार्य करती है'' (होर्फ, कैरोल में उद्धृत-1956 : 212-214)। हमारे जगत का जो बोध हमें होता है उसे निर्धारित करने वाले संज्ञानात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक पैटर्न मुख्यत: उस भाषा की संरचना द्वारा निर्मित, सूत्रित और यहाँ तक कि निर्देशित होते हैं, जिस भाषा को हम बोलते हैं। सापिर-होर्फ की संकल्पना से हम सहमति रखें या ना रखें, लेकिन इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि भाषा और सोच परस्पर एक-दूसरे को परिपोषित करते हैं। एक तरफ यदि भाषा हमारी विचार-प्रक्रिया को व्यवस्थित करती है तो दूसरी तरफ यह हमें मुक्त भी करती है और हमें ज्ञान व कल्पना की अनखोजी दुनिया में ले जाती है। भारतीय भाषाओं और संस्कृति के मामले में हम सामान्यत: एक भाषिक, समाज भाषिक और संस्कृति के ताने-बाने (मैट्रिक्स) को साझा करते हैं और इस मैट्रिक्स की विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्ति निश्चित ही भाषिक व सांस्कृतिक व्यवस्था दोनों के संवर्धन की ओर ले जाती है। भारत में अंग्रेज़ी भी इस मैट्रिक्स का हिस्सा बनती जा रही है हालाँकि यह अभी आंशिक तौर पर ही है लेकिन अकसर कहते हैं कि आने वाले दिनों में यह भारत के संपूर्ण भाषिक और सांस्कृतिक खज़ाने (मैट्रिक्स) का अहम हिस्सा होने जा रही है।

> एक तरफ यदि भाषा हमारी विचार-प्रक्रिया को व्यवस्थित करती है तो दूसरी तरफ यह हमें मुक्त भी करती है और हमें ज्ञान व कल्पना की अनखोजी दुनिया में ले जाती है।

1.12 शिक्षा, भाषा और ज़िम्मेदार नागरिकता

यूनेस्को के अनुसार, "समाज किस प्रकार शिक्षा के उद्देश्यों को परिभाषित करते हैं, इसके प्रकाश में ही गुणवत्ता को देखा जाना चाहिए" शिक्षा का उद्देश्य है यह सुनिश्चित करना कि सभी बच्चे ज़िम्मेदार नागरिकता के निर्वाह हेतु संज्ञान के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल एवं मूल्य हासिल करें, तथा यह भी देखना कि उनका उचित संज्ञानात्मक विकास हो, "साथ ही उनमें रचनात्मक व भावनात्मक वृद्धि को परिपोषित करना, किसी भी समुदाय के प्रति किसी भी प्रकार के विभेद का विरोध करना, दूसरे शब्दों में एक समतामूलक समाज के निर्माण की दिशा में योगदान देना''(यूनेस्को 2004)। आज के युद्ध-उन्मादी माहौल में जिम्मेदार नागरिकता की भूमिका के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता।

जिम्मेदारी का मतलब है एक विकसित समझदारी

की क्षमता क्योंकि समझदारी सामाजिक प्रकार्य का मूलभूत आयाम है (हैबरमास 1998)। बात केवल यह नहीं है कि अपने परिवेश को नियंत्रित करने के लिए इसे समझना है। बल्कि आज ज़रूरी है इसे नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को जानें और स्वयं को सक्षम बनाएँ ताकि हम व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर दूसरों के साथ मेल से रह सकें जो हमसे 'अनेक मामलों में अलग हो सकते हैं, लेकिन यह अलगाव तुलनात्मकता के बदले आनंददायक अनुभव हो।'

स्कूली शिक्षा को ऐसी जगह के रूप में पहचाना गया है- जहाँ 'विभेद में आनंद' लेने के तरीकों को सीखा जा सकता है (ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट, यू.एन. डी.पी.2004)। जहाँ तक सार्वभौम क्षमताओं को परिभाषित करने का सवाल है यह इसमें तब शामिल होती हैं जब सामाजिक प्रकार्य और आपसी समझबूझ को प्राप्त करने के लिए अन्त:क्रिया होती है। कई विद्वान, योजनाकार और दार्शनिक इसी को करने में व्यस्त रहते हैं। हैबरमास कहते हैं कि संप्रेषणात्मक क्षमता परस्पर समझ को प्राप्त करने के लिए ज़रूरी है। संप्रेषण, भाषा का अति महत्त्वपूर्ण प्रकार्य है क्योंकि उनमें निहायत ही व्यक्तिगत स्तर की अभिव्यक्ति के दायरे में आम सहमति या सार्वभौम समझ की ओर उन्मुख होने की संभावनाएँ मौजूद होती हैं (हैबरमास-2000)। वास्तव में यदि भविष्य में भाषा की पाठ्यपुस्तकें, शिक्षकों का प्रशिक्षण और कक्षा में संवाद इस प्रपत्र में प्रस्तुत किए गए सुझावों को ध्यान में रखते हुए बहुभाषिक स्पेस में परिकल्पित किए जाएँ तो भाषा बच्चों को केवल शिक्षित ही नहीं बल्कि ज़िम्मेदार नागरिक बनने हेतु भी अग्रसर करेगी।

2. भाषा सीखना

2.1 भूमिका

जैसाकि हमने पहले कहा कि यह बात रहस्य ही बनी हुई है कि आखिर अत्यंत कम उम्र के बावजूद बच्चा जटिल भाषिक व्यवस्था को कैसे समझ लेता है। कई बच्चे तीन या चार वर्ष के होते-होते न केवल एक, बल्कि दो या तीन भाषाओं का धीरे-धीरे प्रवाह में प्रयोग करना सीख जाते हैं। यही नहीं, वे दिए गए संदर्भ में भी उपयुक्त भाषा का इस्तेमाल करते हैं। इसका अर्थ है वे अपने भाषिक तंत्रों को अलग रखने की क्षमता तो ग्रहण कर लेते हैं लेकिन साथ ही वे इन्हें मिलाना भी जानते हैं जब वे मिलाने की इच्छा करते हैं। इसमें एक तरफ़ तो व्यवहारवादी हैं जैसे पैवलोव और स्किनर; उनके अनुसार अभ्यास, नकल व रटने से भाषा की क्षमता प्राप्त होती है। यह तो चॉम्स्की (1959) की 'रिव्यू ऑफ़ स्किनर्स वर्बल बिहेवियर' है जिसने व्यवहारवाद की बुनियाद को ही हिला कर रख दिया। चॉम्स्की ने तर्क देते हुए कहा कि भाषिक क्षमता जन्मजात ही होती है, वरना भाषिक व्यवस्था को सीखने की प्रक्रिया संभव ही नहीं हो सकती। मगर पियाजे (1962, 1983 कई अन्यों में से) इनहेल्डर और पियाजे (1958) और व्योगोत्स्की (1978,1986) जैसे मनोवैज्ञानिकों ने इन दोनों ही अतिवादी दृष्टिकोणों के बीच का रास्ता चुना। जहाँ व्यवहारवादियों के लिए मस्तिष्क एक 'कोरी स्लेट' जैसा था, वहाँ संज्ञानात्मक रुख रखने वालों (चॉम्स्की आदि) के लिए भाषा मानव-मस्तिष्क में पहले से ही विद्यमान थी, सार्वभौम व्याकरण के रूप में बुनी हुई। पियाजे के अनुसार भाषा अन्य संज्ञानात्मक तंत्रों की भाँति परिवेश के साथ अंत:क्रिया के माध्यम से ही विकसित होती है।

दूसरी ओर व्योगोत्स्की के अनुसार, बच्चे की भाषा समाज के साथ संपर्क का ही परिणाम है, साथ ही बच्चा अपनी भाषा के विकास के दौरान दो तरह की बोली बोलता है: पहली आत्मकेंद्रित और दूसरी सामाजिक। आत्मोन्मुख भाषा के माध्यम से वह खुद से संवाद करता है, जबकि सामाजिक भाषा के माध्यम से वह शेष सारी दुनिया से संवाद स्थापित करता है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि पियाजे और व्योगोत्स्की दोनों ने वास्तव में बच्चों के साथ काम किया था और उनके संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया को बड़ी ही सूक्ष्मता से विश्लेषित करते हुए अपने सिद्धांत विकसित किए थे। उदाहरण के लिए, व्योगोत्स्की ने यह देखा कि छोटे बच्चे न केवल स्वयं का सामाजिक रूप से रचित भाषा तंत्र

विकसित कर लेते हैं बल्कि काफी जटिल पूर्व लेखन तंत्र भी। समय के साथ उन्हें ज़रूरत होती हैं जटिल वाचिक तंत्र विकसित करने की ताकि वे विश्व के साथ अन्तःक्रिया करने हेतु अपना खज़ाना जोड़ सकें।

2.2 पियाजे का परिप्रेक्ष्य

जब भी भाषा सीखने की प्रक्रिया पर बात हो तो वहाँ चॉम्स्की की मानसिक धारणा का बहुत प्रभाव दिखलाई पड़ता है, लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में पियाजे सर्वाधिक प्रभावकारी साबित हुए। सभी बच्चे संज्ञानात्मक विकास के पूर्व-ऑपरेशनल, कंक्रीट ऑपरेशनल और फॉर्मल ऑपरेशनल चरणों से गुजरते हैं। इस धारणा ने संपूर्ण शिक्षाशास्त्रीय विमर्श पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डाला। लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि शिक्षाविद् और भाषा विशेषज्ञ चॉम्स्की की अवधारणा का भरपूर इस्तेमाल नहीं कर पाए। चॉम्स्की के अनुसार, भाषा सीखे जाने के क्रम में, वैज्ञानिक पड़ताल भी साथ-साथ चलती रहती है। मसलन आँकड़ों का अवलोकन, वर्गीकरण, संकल्पना-निर्माण व उनका सत्यापन अथवा असत्यता और इस धारणा का शिक्षा शास्त्र के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान लिया जा सकता था। पियाजे जन्मजात भाषिक क्षमता वाली संकल्पना से सहमत नहीं हुए। उनके निर्माणवादी दृष्टिकोण के अनुसार सभी ज्ञान-तंत्र सेंसरी मोटर मेकैनिज़्म के माध्यम से निर्मित होते हैं जिसमें बच्चा आत्मसातीकरण और समायोजन के माध्यम से कई रूपरेखाएँ (schematas) बनाता जाता है।

> यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि शिक्षाविद् और भाषा विशेषज्ञ चॉम्स्की की अवधारणा का भरपूर इस्तेमाल नहीं कर पाए। चॉम्स्की के अनुसार, भाषा सीखे जाने के क्रम में, वैज्ञानिक पड़ताल भी साथ-साथ चलती रहती है। मसलन आँकड़ों का अवलोकन, वर्गीकरण, संकल्पना-निर्माण व उनको असत्य सिद्ध करना। इसका शिक्षाशास्त्र के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान लिया जा सकता था।

2.3 भाषा शिक्षण का उद्देश्य

चूँकि बच्चे अच्छी ख़ासी विकसित भाषिक व्यवस्था के साथ ही स्कूल आते हैं, इसलिए इसे ध्यान में रखते हुए ही स्कूली पाठ्यचर्या में भाषा शिक्षण के उद्देश्य तय किए जाने चाहिए। सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य बच्चे को इस प्रकार से साक्षर बनाना है कि बच्चा समझने के साथ पढ़ने व लिखने की क्षमता हासिल कर सके। साथ ही द्विभाषिकता और पराभाषिक चेतना को बढ़ावा देना हमारा प्रयास होना चाहिए। साथ ही विद्यार्थियों में विनम्रता व नम्यता की क्षमता विकसित करना ज़रूरी है ताकि वे सभी प्रकार की स्थितियों में सहिष्णुता व आत्मसम्मान के साथ संवाद स्थापित करने की क्षमता प्राप्त कर सकें।

यद्यपि भाषा-विज्ञानी सिद्धान्तों और आनुप्रायोगिक भाषा विज्ञान की अंतःक्रिया ने कई तरह की शिक्षण पद्धतियों व सामग्री को जन्म दिया, लेकिन भाषा की कक्षाएँ अभी भी बोरियत भरी व उबाऊ बनी हुई हैं और व्यवहारवादी ढाँचे का ही अनुसरण कर रही हैं। वे भाषाएँ जिनसे बच्चा परिचित होता है यानी जिनके साथ स्कूल में प्रवेश करता है उनमें विशेष प्रगति नहीं कर पाता, द्वितीय भाषा (जैसे अंग्रेज़ी) के मामले में 6 से 10 साल तक लगातार पढ़ाए जाने के बावजूद बच्चे आधारभूत आरंभिक स्तर की दक्षता भी हासिल नहीं कर पाते और शास्त्रीय अथवा विदेशी भाषाओं के मामले में तो केवल कुछ चुनी हुई चीज़ों का रट्टा मारने का चलन जारी है। ऐसा नहीं है कि इन बातों पर अध्ययन नहीं हुए हैं। ज़रूरत है हम विशिष्ट संदर्भों को समझें, फिर कुछ उद्देश्य तय करें और उनके अनुसार उपयुक्त तरीके व सामग्री विकसित करें।

बहुत लंबे समय से हम भाषा शिक्षण के उद्देश्य को

> द्विभाषिकता और पराभाषिक चेतना को बढ़ावा देना हमारा प्रयास होना चाहिए। साथ ही विद्यार्थियों में विनम्रता व नम्यता की क्षमता विकसित करना ज़रूरी है ताकि वे सभी प्रकार की स्थितियों में सहिष्णुता व आत्मसम्मान के साथ संवाद स्थापित करने की क्षमता प्राप्त कर सकें।

महज सुनने-बोलने-पढ़ने-लिखने (एस.एल.आर.डब्ल्यू.) के मद्देनजर देखते रहे हैं। हाल ही में हमने संप्रेषण कौशलों, उच्चारण विविधता और स्वर प्रशिक्षण, आदि के बारे में गंभीरता से बात करना शुरू किया है। इन क्षमताओं या कुशलताओं पर अतिरिक्त फोकस का बड़ा ही नुकसान हुआ है। इस आधार पत्र में यद्यपि हम इसी ढाँचे के तहत उद्देश्यों पर बात करेंगे, लेकिन हम भाषा दक्षता के मामले में ज़्यादा समग्रतावादी दृष्टिकोण अपनाने की वकालत भी करते हैं। आखिर जब हम बोल रहे होते हैं तभी सुन भी रहे होते हैं और जब हम लिख रहे होते हैं तभी पढ़ भी रहे होते हैं। साथ ही कई परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं (जैसे मित्र मिलजुल कर नाटक पढ़ रहे होते हैं और इसके लिए कुछ नोट करते हैं) जिसमें हमारी भाषा क्षमता के सभी पहलू और संज्ञानात्मक योग्यताएँ एक साथ काम कर रही होती हैं। हमारे कुछ लक्ष्य इस प्रकार हैं:

(क) **जो कुछ वह सुनती है उसे समझने की दक्षता :** एक शिक्षार्थी को जो कुछ कहा गया है उसे समझने के लिए उसमें वक्ता की ओर से आने वाले विभिन्न गैर शाब्दिक संकेतों को ग्रहण करने की क्षमता होनी चाहिए। उसमें गैर शाब्दिक संकेतों के द्वारा सुनकर और समझकर संबंध जोड़ने और अनुमान लगाने की कुशलता होनी चाहिए।

(ख) **समझ के साथ पठन की योग्यता होनी चाहिए न कि मात्र डिकोडीकरण की :** उसे विभिन्न व्याकरण सम्मत, अर्थगत और लिपि संकेतों के प्रयोग द्वारा आरेखित तरीके से संबंधित विषयवस्तु से पठन की आदत विकसित करनी चाहिए तथा अपने पिछले ज्ञान के साथ जोड़कर निष्कर्षों द्वारा अर्थ निर्माण के योग्य होना चाहिए। उसे पठन के लिए आत्मविश्वास विकसित करना चाहिए तथा विवेचनात्मक दृष्टिकोण के साथ पढ़ते समय प्रश्न भी सामने रखने चाहिए।

(ग) **सहज अभिव्यक्ति :** उसे विभिन्न परिस्थितियों में अपने संप्रेषणात्मक कौशलों को प्रयोग में लाने में समर्थ होना चाहिए। उसके खज़ाने में अभिव्यक्ति के कई तरीके होने चाहिए जिन्हें वह चुन सके। उसे इस योग्य भी होना चाहिए कि वह तार्किक, विश्लेषणात्मक तथा रचनात्मक ढंग से परिचर्चा में शामिल हो सके।

(घ) **सुसंगत लेखन :** लेखन एक यांत्रिक कौशल नहीं है। इसमें विभिन्न संबद्ध युक्तियाँ अर्थात् तत्संबंधी विषयों के द्वारा उस विषय को संयोजित करने एवं पयार्यवाची इत्यादि के प्रयोग द्वारा विचारों को सुसंगत ढंग से संयोजित करने की योग्यता के साथ-साथ व्याकरण, शब्द-ज्ञान, विषय, विराम-चिह्नों इत्यादि पर पर्याप्त नियंत्रण इत्यादि कौशल सम्मिलित है। शिक्षार्थी को अपने विचार सहज एवं व्यवस्थित ढंग से प्रकट करने का आत्मविश्वास विकसित करना चाहिए। विद्यार्थी को अपने लिए विषय का चयन करने, विचारों को व्यवस्थित करने और श्रोता-बोध की दृष्टि से लिखने के लिए प्रोत्साहित एवं प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। यह केवल तभी संभव है यदि उसका लेखन एक प्रक्रिया के रूप में दिखाई दे न कि एक उत्पाद के रूप में। उसे विभिन्न उद्देश्यों से और विभिन्न परिस्थितियों में अनौपचारिक से पूर्णत: औपचारिक रूप तक लेखन का प्रयोग करना आना चाहिए।

(ङ) **विभिन्न रजिस्टरों पर नियंत्रण :** भाषा का प्रयोग कभी भी एक तरह से नहीं होता है। इसके असंख्य प्रकार, अर्थ भेद एवं रंग होते हैं जो विभिन्न परिस्थितियों और विभिन्न क्षेत्रों के अनुसार होते हैं। विभिन्न स्वर स्तरों (रजिस्टरों) के रूप में जानी जाने वाली विभिन्नताएँ, एक विद्यार्थी के शब्द/वाक्य भंडार का एक अंश होना चाहिए। विद्यालय के विषयों के अतिरिक्त विद्यार्थी को विभिन्न प्रयोजनों जैसे- संगीत, खेलकूद, फ़िल्म, बागवानी, निमार्ण कार्य,

पाककला इत्यादि में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न भाषाओं को समझने और उनके प्रयोग में भी दक्ष होना चाहिए।

(च) **भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन :** भाषा की कक्षा में विभिन्न शिक्षण तकनीकियाँ अपनाई जानी चाहिए। कराए जाने वाले कार्य इस प्रकार से होने चाहिए कि उससे बच्चा वैज्ञानिक प्रक्रिया के तमाम अवयवों जैसे– आँकड़ों का संकलन, आँकड़ों का अवलोकन और उनकी समानताओं और विभिन्नताओं के आधार पर उनका वर्गीकरण एवं परिकल्पना करने, इत्यादि के अनुसार अग्रसर हो। इस प्रकार बच्चे की संज्ञानात्मक योग्यताओं को विकसित करने में भाषा विज्ञान के ये उपकरण महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। इससे व्याकरण के मानक नियमों को बेहतर ढंग से सीखा जा सकेगा। तथापि यह प्रक्रिया बहुभाषीय कक्षाओं में विशेष रूप से प्रभावी है।

(छ) **सृजनात्मकता :** भाषा की कक्षा में एक विद्यार्थी को अपनी कल्पना और सृजनात्मकता विकसित करने के लिए पर्याप्त स्थान मिलना चाहिए। कक्षा का लोकाचार और शिक्षक–विद्यार्थी संबंध बच्चे में आत्मविश्वास विकसित करता है जिससे पाठ्यसामग्री के आदान–प्रदान और गतिविधियों में बिना अवरोध के दोनों ही सृजनात्मकता का प्रयोग करते हैं।

(ज) **संवेदनशीलता :** भाषा की कक्षा द्वारा विद्यार्थियों को हमारी समृद्ध संस्कृति विकसित करने एवं समकालीन जीवन के विभिन्न पहलुओं से अवगत करवाने के बेहतर अवसर उपलब्ध होते हैं। भाषा की कक्षा और पाठ्यसामग्री से विद्यार्थियों को अपने इर्द–गिर्द लोगों एवं राष्ट्र के प्रति संवेदनशील बनने के अधिक अवसर भी प्राप्त होते हैं।

> ...एक शिक्षार्थी एक भाषा के व्याकरण को सहज निर्मित करने में तभी सक्षम होगा यदि उसे चिंता रहित परिस्थितियों में बोधगम्य सामग्री उपलब्ध करवाई जाए। जैसा कि क्राषेन (1985) ने सुझाव दिया, निवेश केवल तभी ग्राह्य बनेंगे यदि अभिवृत्तियाँ सकारात्मक हों और अभिप्रेरणा सुदृढ़ हो।

2.4 कुछ शिक्षाशास्त्रीय प्रस्ताव

भाषा अर्जन पर समकालीन शोध ने शिक्षार्थी को भाषा शिक्षण के केंद्र में रखा है। यह सुझाव दिया गया है कि एक शिक्षार्थी एक भाषा के व्याकरण को सहज निर्मित करने में तभी सक्षम होगा यदि उसे चिंता रहित परिस्थितियों में बोधगम्य सामग्री उपलब्ध करवाई जाए। जैसा कि क्राषेन (1985) ने सुझाव दिया, निवेश केवल तभी ग्राह्य बनेंगे यदि अभिवृत्तियाँ सकारात्मक हों और अभिप्रेरणा सुदृढ़ हो। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कुछ मामलों में जहाँ अंग्रेज़ी एक विदेशी भाषा होने के बावजूद व्याकरण मूल्यों पर शिक्षार्थी के चेतन मन को जागरूक करने में कुछ सीमा तक सहायक होती है। क्राषेन ने बताया है कि बच्चे कैसे अपने कार्य में सुधार ला सकते हैं जब उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता दी जाती है और वे क्या लिखते हैं इसे संपादित करने के लिए समय दिया जाता है। संज्ञानात्मक

> ‘हमारे जमाने में बच्चों की शिक्षा में **प्रशिका** एक अत्यधिक रोमांचक अनुभव है। इसने विभिन्न रुचियों और पृष्ठभूमि के विशिष्ट व्यक्तियों को एक साथ इकट्ठा किया... जिन विचारों को उन्होंने आगे बढ़ाया वे विश्व में प्रगतिशील शिक्षाशास्त्र के मूल तत्वों के रूप में मान्य हैं, जैसे वैयक्तिक अद्वितीयता, लघु समूह क्रियाकलाप, कक्षा कार्यों में विद्यालय के बाहर के अनुभव की प्रासंगिकता।’
>
> कृष्ण कुमार

वृद्धि के अपेक्षाकृत व्यवस्थित स्तर पर दिया गया बल भाषा शिक्षकों को अधिगम प्रक्रिया में विकृतियों का समाधान किए जाने की अपेक्षा सुव्यवस्थित स्तर पर त्रुटियों को देखने हेतु प्रोत्साहित करता है।

पियाजे का परिवेश के साथ अनुक्रिया पर बल देना समृद्ध परिस्थितियों में भाषा शिक्षण के महत्त्व पर प्रकाश डालता है। व्योगोत्स्की की निकटस्थ विकास के क्षेत्र की धारणा ने भाषा शिक्षण के बाल-केंद्रित दृष्टिकोण को आगे बढ़ाया है। अब यह स्पष्ट होता जा रहा है कि कक्षा व्यवस्था में जहाँ तक संभव हो भाषा अधिगम की प्राकृतिक परिस्थितियाँ रची जानी चाहिए। एकलव्य का 'प्रशिक्षण' प्रयोग (1964) अर्थ पर विशेष जोर देने के सिद्धांत पर आधारित था न कि भाषा के रूप पर। 'खुशी-खुशी' किताबें हिंदी भाषा शिक्षण के इतिहास में एक ऐतिहासिक घटना है।

3. संवैधानिक प्रावधान और त्रिभाषा सूत्र

3.1 भूमिका

इस अध्याय में हम भाषा के संबंध में भारतीय संविधान के प्रावधानों और त्रिभाषा सूत्र पर बात करेंगे। हमारे विचार से त्रिभाषा सूत्र को कार्यान्वित करते समय राज्य के भीतर और राज्यों के बीच लचीलेपन को तरज़ीह देनी चाहिए।

3.2 संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान के सत्रहवें भाग में धारा 343 से 351 तक तथा 8वीं अनुसूची में भाषाओं के मुद्दों को सम्मिलित किया गया है। धारा 343 (1) के अनुसार, "भारत की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिंदी होगी" साथ ही हिंदी के विकास के लिए कुछ दिशा-निर्देश भी दिए गए हैं: ''हिंदी भाषा का इस तरह विकास और प्रोत्साहन दिया जाए ताकि यह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों को अभिव्यक्ति प्रदान कर सकने वाला माध्यम बन सके।'' (धारा 351)

यहाँ गौरतलब है कि हिंदी हमारी राजभाषा है, संविधान की धारा 343 (2) के अनुसार सभी कार्यालयी कार्यों के संपादन हेतु अंग्रेज़ी को पंद्रह वर्षों तक प्रयोग करने की बात की गई है। लेकिन, 1965 तक आते-आते हिंदी व आर्य-वर्चस्व के खतरे को भाँपते हुए दक्षिण भारत में व्यापक स्तर पर दंगे फ़साद हुए। इससे पता चला कि अंग्रेज़ी को राजभाषायी पद से पूर्णतः त्यागना संभव नहीं होगा। 1965 में इसे सहायक कार्यालयी भाषा का दर्ज़ा मिला। संविधान में इस बात का भी प्रावधान है कि उच्च न्यायालय, सर्वोच्च न्यायालय और संसद के अधिनियम की भाषा अंग्रेज़ी ही रहेगी। साथ ही संविधान प्रत्येक नागरिक को अपनी भाषा में राज्य को संबोधित करने का अधिकार प्रदान करता है। धारा 350 ए (सातवें संशोधन अधिनियम, 1956) में, प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए भाषिक अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों को उनकी मातृभाषा में पठन-पाठन की बात की गई है। हम यहाँ इस बात की ओर भी ध्यान देंगे कि 8वीं अनुसूची का शीर्षक 'भाषाएँ' है। इसके खुलेपन का सबूत है कि पिछले पचास वर्षों में इसमें शामिल भाषाओं की संख्या चौदह से बाईस हो गई। ऐसा प्रतीत होता है कोई भी भाषा जो देश में कहीं भी प्रयुक्त हो रही है वैधानिक रूप से 8वीं अनुसूची का भाग हो सकती है।

> हिंदी हमारी राजभाषा है, संविधान प्रत्येक नागरिक को अपनी भाषा में राज्य को संबोधित करने का अधिकार प्रदान करता है, भाषिक अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों को उनकी मातृभाषा में पठन-पाठन की बात की गई है।

भाषाओं की बहुलता और कई महत्त्वपूर्ण कार्यों में अंग्रेज़ी की बढ़ती जा रही उपयोगिता ने साबित कर दिया है कि बहुभाषी समाज में भागीदारी सुनिश्चित कराने वाली और जनतांत्रिक व्यवस्था के बने रहने के लिए भाषा के मामले में कोई सीधा-सरल समाधान प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। औपनिवेशिक शासन की अवधि के दौरान प्रयुक्त अंग्रेज़ी ने इतना लंबा सफर तय कर लिया

है कि इससे आती औपनिवेशिकता की गंध अब खत्म हो गई है और इसलिए इसके प्रति प्रतिक्रियावादी रुख भी तेज़ी से लुप्त होते गए हैं। अब रोज़गार के अवसर प्रदान कराने एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क भाषा के रूप में बढ़ रहे इसके प्रयोग ने इसकी महत्ता को और बढ़ा दिया है। दूसरी तरफ़, देश के शैक्षणिक और सत्ता संरचना में अनेक अल्पसंख्यक व आदिवासी भाषाएँ अपनी प्रबल दावेदारी के साथ शामिल होने के लिए उभरकर सामने आ रही हैं। साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर संपर्क भाषा के रूप में हिंदी भी लगातार फैल रही है।

3.3 त्रिभाषा सूत्र

इसमें हमें कोई अचरज नहीं होना चाहिए कि 1961 में विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों की बैठक में सर्वसम्मति से त्रिभाषा सूत्र उभर कर आया। श्रीधर (1989 : 22) के अनुसार, सामूहिक अस्मिता के हितों (मातृभाषाएँ और क्षेत्रीय भाषाएँ), राष्ट्रीय स्वाभिमान और एकता (हिंदी) तथा प्रशासकीय सुविधा व तकनीकी उन्नति (अंग्रेज़ी) को समायोजित करने के उद्देश्य से कोठारी कमीशन (1964–66) द्वारा त्रिभाषा सूत्र में सुधार लाया गया। जैसा कि पटनायक (1986) कहते हैं, त्रिभाषा सूत्र महज़ एक रणनीति है न कि राष्ट्रीय भाषा नीति। इस नीति को ऐसे कई मुद्दों व क्षेत्रों का खयाल करना होगा जो संविधान में और त्रिभाषा सूत्र दोनों में छूट गए हों। शिक्षा में भाषा की जटिलता स्कूल स्तर पर भी देखी जा सकती है (चार्ट–परिशिष्ट–III)। परिशिष्ट में दिए गए चार्ट भारतीय राज्यों में भाषिक परिस्थितियों की विविधता को रेखांकित करते हैं। ये चार्ट फोकस समूह के सदस्यों द्वारा बनाए गए थे। इनका आधार था– संबंधित राज्यों में विद्यालयी शिक्षा परिस्थितियों का विश्लेषण। ये चार्ट भारतीय राज्यों में भाषायी परिस्थितियों की विविधता प्रदर्शित करते हैं।

इसी परिस्थिति की जटिलता को 1968 के त्रिभाषा सूत्र ने पकड़ने की कोशिश की है। 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इस बात पर फिर ज़ोर डाला और हम इसका संशोधित रूप 1992 की कार्यकारी योजना में देखते हैं। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (देखें www.education.nic.in/NatPol.asp) ने 1968 की शिक्षा नीति में दिए गए भाषा संबंधी प्रस्तावों का समर्थन किया था। "1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (www.languageinindia.com) में भाषा के विकास के प्रश्न पर गहन रूप से विचार किया गया। इसके द्वारा सुझाए गए प्रस्तावों से स्थिति में सुधार नहीं लाया जा सका और ये आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने पहले थे। इस तरह की स्थिति कई जटिल मुद्दों पर ध्यान नहीं देती है और यह धारणा बना लेती है कि 1960 से भाषाओं के क्षेत्र में कुछ नहीं हुआ। यहाँ तक कि 1968 की नीति का ठीक से क्रियान्वयन भी नहीं हुआ। 1968 की नीति के अनुसार:

- स्कूल में पहली भाषा जो पढ़ाई जाए वह मातृभाषा हो या क्षेत्रीय भाषा
- द्वितीय भाषा
  - हिंदी भाषी राज्यों में द्वितीय भाषा कोई भी अन्य आधुनिक भाषा हो या अंग्रेज़ी, और
  - गैर हिंदी भाषी राज्यों में द्वितीय भाषा हिंदी या अंग्रेज़ी होगी।
- तृतीय भाषा
  - हिंदी भाषी राज्यों में तीसरी भाषा अंग्रेज़ी होगी या एक आधुनिक भारतीय भाषा जो द्वितीय भाषा के रूप में न पढ़ी जा रही हो।
  - गैर हिंदी भाषी राज्यों में तीसरी भाषा अंग्रेज़ी होगी या एक आधुनिक भारतीय भाषा जो द्वितीय भाषा के रूप में न पढ़ी जा रही हो।

यह सुझाव दिया गया था कि प्राथमिक स्तर पर अनुदेशन का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए तथा राज्य सरकारों को इस सूत्र को अपनाने के साथ–साथ इसे गंभीरतापूर्वक कार्यान्वित करने की कोशिश करनी चाहिए जिसमें हिंदी भाषी राज्यों में आधुनिक भारतीय भाषाओं में से मुख्य रूप से एक दक्षिणी भाषा हो, हिंदी और अंग्रेज़ी के अतिरिक्त और ग़ैर हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी हो। विश्वविद्यालय तथा कॉलेज स्तर पर भी हिंदी और/या अंग्रेज़ी के उपयुक्त पाठ्यक्रम उपलब्ध होने चाहिए ताकि

इन भाषाओं में विद्यार्थी अपने स्तर के हिसाब से कुशलता हासिल कर सकें।

त्रिभाषा सूत्र भाषा सीखने के लिए कोई लक्ष्य या सीमा निर्धारित नहीं करता है, बल्कि यह तो उस यात्रा का प्रस्थान बिंदु मात्र है जिसमें लगातार फैलते हुए ज्ञान की खोज और देश की भावनात्मक एकता की तलाश है।

इस तरह अपनी मूल भावना में त्रिभाषा सूत्र हिंदी भाषी राज्यों के लिए हिंदी, अंग्रेज़ी और भारतीय भाषाओं (ख़ासकर दक्षिण भारतीय भाषा) का, और हिंदीतर राज्यों के लिए क्षेत्रीय भाषा, हिंदी व अंग्रेज़ी का प्रावधान प्रस्तावित करता है। लेकिन इसके प्रति प्रतिबद्धता से ज़्यादा इसका अतिक्रमण करते हुए ही पाया गया है। हिंदी राज्य हिंदी, अंग्रेज़ी व संस्कृत तथा गैर हिंदी राज्य ख़ासकर तमिलनाडु द्विभाषी सूत्र यानी तमिल और अंग्रेज़ी से काम चलाते हैं । तथापि बहुत सारे राज्य त्रिभाषी सूत्र को अपनाए हुए हैं जैसे उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र और कुछ अन्य राज्य।

3.4 त्रिभाषा सूत्र के गुण एवं दोष

त्रिभाषा सूत्र को एक रणनीति के रूप में अपनाए जाने से स्थानीय, शास्त्रीय और विदेशी भाषाओं के अध्ययन के लिए स्थिति तैयार हुई है। साथ ही मातृभाषा अध्ययन के लिए भी एक स्थिति बनी है। राज्य इस त्रिभाषा सूत्र के बाहर जाकर किसी भी भाषा को शिक्षण में शामिल करने के लिए स्वतंत्र थे। संस्कृत को शास्त्रीय भाषा के रूप में लिया जा सकता था। इसे आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में भी त्रिभाषा सूत्र को अतिक्रमित किए बिना लिया जा सकता था। 1953 से जब यूनेस्को ने घोषणा की कि बच्चे की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा से बेहतर और कोई भाषा नहीं हो सकती तब तमाम समूह अपनी-अपनी भाषाओं को मान्यता दिलाने व संविधान की आठवीं सूची में शामिल करने के लिए उठ खड़े हुए। जब तक त्रिभाषा सूत्र की मूल भावना से छेड़छाड़ न किया जाए, नयी भाषाएँ पढ़ने पर कोई अंकुश नहीं है।

प्राथमिक शिक्षा दो भाषाओं में होनी चाहिए। इसे इस तरह क्रमिक विस्तार देना चाहिए कि बाद में यह समेकित बहु-भाषीय रूप ले सके। स्कूल का सबसे पहला दायित्व बनता है – घर की भाषा से स्कूल की भाषा को जोड़ना। उसके बाद, एक या उससे अधिक भाषा को जोड़ दिया जाए ताकि बच्चा पहली भाषा को बिना छोड़े अन्य भाषा में आसानी से पहुँच सके। इससे सभी भाषाएँ परस्पर पूरक हो सकती हैं।

परिशिष्ट III में, आप पाँच 'आदर्श चार्ट' (तालिकाएँ) पाएँगे जिन्हें विभिन्न राज्यों के प्रतिभागियों ने तैयार किया है और एक चार्ट हमारे ग्रुप ने प्रस्तावित किया है। वस्तुत: फोकस ग्रुप के चार्ट में एक प्रकार की सहमति-सी देखी जा सकती है। इन छह चार्टों में कई महत्त्वपूर्ण समानताएँ देखने को मिलती हैं मसलन प्राथमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए, अंग्रेज़ी अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ायी जानी चाहिए, हिंदी या तो अनिवार्य या ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ायी जानी चाहिए, शास्त्रीय व विदेशी भाषाओं को स्कूली-पाठ्यचर्या में जगह मिलनी चाहिए।

परिशिष्ट III में प्रस्तावित राष्ट्रीय फोकस समूह का चार्ट हमारे देश में सामाजिक व वैयक्तिक स्तर पर स्वीकृत हो रहे बहुभाषीय संदर्भ को ध्यान में रखते हुए विकसित किया गया है। इस संदर्भ को हम मातृभाषा के रूप में-घर, गली, पड़ोस, दोस्तों और सगे-संबंधियों के बीच बोली जाने वाली भाषाओं को लेते हैं; क्षेत्रीय भाषा जो राज्य स्तर पर ज़्यादा बोली जाती हो या फिर अल्पसंख्यकों के मामले में राज्य के बाहर; और राज्य भाषा के रूप में उस भाषा को लेते हैं जो राज्य स्तर पर मान्य राजभाषा के रूप में स्वीकृत होती है। ये सभी हिंदी को ऑफ़िशियल एवं संपर्क भाषा और अंग्रेज़ी को सहायक ऑफ़िशियल व अंतर्राष्ट्रीय स्तर के संपर्क भाषा के रूप में ध्यान में रखते हुए ही परिभाषित की गई हैं। इसी संदर्भ में हम यह सुझाव देते हैं:

(क) विद्यालय स्तर पर विशेषकर प्राथमिक स्तर की शिक्षा में अनुदेशों का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए। 1986 में एन.सी.ई.आर.टी. के द्वारा भाषा

के अध्ययन के लिए गठित समिति ने सुझाव दिया था कि आरंभिक शिक्षा में माध्यम के रूप में मातृभाषा ही प्रयुक्त होनी चाहिए। भारतीय संदर्भ में यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है, क्योंकि –

i) यह लोगों को राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में भागीदारी के योग्य बनाती है।
ii) महज कुछ अभिजात्य की गिरफ़्त से ज्ञान को मुक्त करती है।
iii) यह परस्पर सहयोगी व परस्पर निर्भर समाज के निर्माण में सहायक होती है।
iv) अधिक से अधिक लोगों को अपना मत रखने का अवसर प्रदान करती है और इसलिए जनतंत्र को बेहतर सुरक्षा आधार देने में कारगर सिद्ध होती है।
v) सूचना के विकेंद्रीकरण की राह खोलती है और नियंत्रित मीडिया की जगह स्वतंत्र मीडिया के विकास में सहयोगी की भूमिका निभाती है। साथ ही अधिक से अधिक लोगों को शिक्षा एवं व्यक्तित्व विकास के लिए भी अवसर प्रदान करती है।

यूनेस्को के शैक्षणिक आधार पत्र (2003) के अनुसार आरंभिक शिक्षण के लिए मातृभाषा अत्यंत आवश्यक है और इसे जहाँ तक बरकरार रखा जा सके, रखा जाना चाहिए। कुछ अध्ययनों (जैसे सहगल 1983) ने दिखलाया है कि जो बच्चे मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करते हैं वे भाषिक या विद्वता के स्तर पर अंग्रेज़ी माध्यम से पढ़ रहे समान स्तर के विद्यार्थियों की तुलना में कहीं से भी कम नहीं ठहरते। 15–17 वर्ष के बीच के 78 बच्चों पर किए गए शोध के बाद गुप्ता (1995) का कहना है कि आरंभिक अवस्था में दो वर्षों तक मातृभाषा का माध्यम के रूप में इस्तेमाल, बच्चों में मातृभाषा व द्वितीय भाषा में ज़्यादा अच्छी दक्षता उत्पन्न करता है।

माध्यम भाषा के रूप में मातृभाषा का उपयोग, घर में बोली जाने वाली भाषा और स्कूल में बोली जाने वाली भाषा के बीच के अंतर की वजह से भाषिक और सांस्कृतिक फ़ासले को मिटा सकता है अर्थात् संदर्भ के लिए बिंदु अल्पसंख्यक भाषा या बहुसंख्यक भाषा हो सकती है। आचार्य (1984) के अनुसार आरंभिक स्तर पर ही 26 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाना छोड़ देते हैं। इसकी वजह है– शिक्षा में दिलचस्पी का न होना जिसके लिए मुख्य रूप से ज़िम्मेदार है, भाषा में सांस्कृतिक विषय–वस्तु का अभाव। कारण भाषा 'संस्कृति का एक अवयव मात्र नहीं बल्कि 'संस्कृति की संवाहक' भी होती है। घर की भाषा से स्कूल की भाषा की ओर बढ़ना अच्छी तरह हो सकता है यदि मातृभाषा शिक्षण का माध्यम हो।

कोई क्षेत्रीय भाषा (राज्य स्तरीय) उस राज्य के सभी विद्यार्थियों की मातृभाषा हो यह ज़रूरी नहीं। यही बात एक कक्षा के साथ भी है। अलग–अलग बोली बोलने वाले एक ही कक्षा में हो सकते हैं जहाँ घोषित क्षेत्रीय भाषा बोलने वाला इनमें से कोई नहीं हो। हालाँकि कोठारी आयोग के अनुसार, 'अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों को भी संविधान के तहत अधिकार प्राप्त हैं.... . कि वे अपनी बोली में... आरंभिक शिक्षा प्राप्त करें' तथापि इस संबंध में अल्पसंख्यक की भाषाओं पर एक स्पष्ट योजना बनाने की ज़रूरत है।

> मातृभाषा में शिक्षा से कक्षा में पढ़ाई को समृद्ध करने में सुविधा होगी, शिक्षार्थियों की अधिकाधिक प्रतिभागिता होगी और बेहतर परिणाम निकलेंगे। इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाएँ। सभी में मातृभाषा में शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण सुनिश्चित किया जाए ताकि शिक्षार्थी वह माध्यम अपनाने में संकोच न करे जिसमें वह आसानी से समझ सके।

1988 और 2000 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं में यह प्रस्ताव दिया गया है कि 'स्कूली शिक्षा के दौरान सभी स्तरों पर या कम से कम आरंभिक स्तर तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा होना चाहिए' (एन.सी.एफ.एस.ई. 2000)। लेकिन यहाँ मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा के बीच के अंतर की गंभीर समस्या को नज़रअंदाज़ कर दिया गया है। इस फ्रेमवर्क में कहा

गया है कि यदि क्षेत्रीय भाषा विद्यार्थी की मातृभाषा नहीं है तो उसकी प्रथम दो साल तक की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से हो सकती है। तीसरी कक्षा और उसके बाद से 'क्षेत्रीय भाषा को माध्यम भाषा के रूप में अपनाया जा सकता है' (एन.सी.एफ.एस.ई. 2000)। शिक्षाविदों और शिक्षा-योजनाकारों के लिए यह जानना अत्यंत ज़रूरी है कि स्कूल में आने वाले बच्चे अपने घर या आसपास बोली जाने वाली भाषा (अपनी मातृभाषा) में पारंगत हो सकते हैं जो घोषित राजभाषा, अनुसूचित भाषा या क्षेत्रीय भाषा से भिन्न हो। शिक्षामंत्रियों के सम्मेलन (1949) में सर्वसम्मति से स्वीकारा गया कि अल्पसंख्यक बोली के बच्चे को अपनी बोली में शिक्षा प्राप्त करने का संवैधानिक अधिकार है-यदि ऐसा वे चाहें, और 'यदि 40 बच्चों की कक्षा में उनकी संख्या कम से कम 10 हो' (कोठारी आयोग)। क्षेत्रीय भाषा इस अवस्था में नहीं आनी चाहिए जिससे कक्षा में बच्चों के बीच अच्छा संवाद और अच्छी सहभागिता होगी, इसके और अच्छे परिणाम सामने आ सकते हैं। इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध कराने के सभी प्रयास किए जाने चाहिए। यह कक्षा में आदान-प्रदान की प्रक्रिया को और अधिक समृद्ध बनाने में मदद करेगी और मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने के प्रति चारों ओर सकारात्मक वातावरण तैयार होना चाहिए ताकि विद्यार्थी को उस माध्यम को सुनने में कोई हिचक न हो जिसमें वह आसानी से सीख सकता हो। झिंगरन (2005) के अनुसार लगभग 12 प्रतिशत बच्चे शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं क्योंकि उन्हें अपनी मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा की सुविधा प्राप्त नहीं होती। ये बच्चे विविध श्रेणियों से आते हैं मसलन अनुसूचित जनजातियों के बच्चे जिनकी भाषा में उनकी अपनी बोली सुनाई देती है, प्रवासी माता-पिता के बच्चे और सिंधी, कश्मीरी, डोगरी और कोंकणी आदि भाषाएँ बोलने वाले बच्चे। तथापि इनकी बोलियों में पाठ्यपुस्तकें तैयार करने में अत्यंत सावधानी बरतनी चाहिए, जो महज़ अंग्रेज़ी का घटिया अनुवाद भर न हो। यही एक तरीका है जिससे हम तेज़ी से लुप्त हो रही भाषाओं और स्थानीय ज्ञान-पद्धतियों को बचा सकते हैं और साथ ही इन्हीं भाषाओं में नए ज्ञान के सृजन के लिए भी जगह बना सकते हैं अन्यथा उनकी संस्कृति और लोगों तक पहुँचना कठिन होगा। (देखें पटनायक 1986 अ)

(ख) स्कूली शिक्षा के माध्यमिक या उच्चतर स्तर पर शिक्षा का माध्यम, धीरे-धीरे क्षेत्रीय भाषा या राज्य स्तरीय भाषा या हिंदी या अंग्रेज़ी हो सकता है।

(ग) हमारे अनुसार प्राथमिक शिक्षा मुख्यत: भाषा-शिक्षा है, इसलिए मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा भी अनिवार्य विषयों के रूप में पढ़ाई जानी चाहिए।

(घ) मनुष्य भाषाओं को सीखने की असीम क्षमता रखता है, ख़ासकर जब वह कम उम्र का हो। अंग्रेज़ी भी प्राथमिक स्तर पर पढ़ाई जा सकती है यदि पर्याप्त सुविधा उपलब्ध हो। महज़ कुछ सालों की अंग्रेज़ी की शिक्षा को जोड़ देने भर से कुछ नहीं होने वाला है। हम ज़ोर डालकर कहना चाहते हैं कि अंग्रेज़ी की पढ़ाई बहुभाषिक संदर्भ में ही बुनावट लिए होनी चाहिए। सामान्य मत के विपरीत, भाषाएँ एक दूसरे के साथ ही विकास करती है।

(ड.) यह ज़ाहिर है कि तीन भाषाएँ त्रिभाषा सूत्र में न्यूनतम हैं। यह इस सूत्र की ऊपरी सीमा नहीं है। संस्कृत को आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में पढ़ा जाना चाहिए जहाँ इसकी प्रकृति शास्त्रीय संस्कृत से बहुत अलग होनी चाहिए।

(च) शास्त्रीय और विदेशी भाषाएँ अपनी-अपनी तरह से पढ़ी जानी चाहिए। ये व्याकरणीय जटिलता की नयी संभावनाओं को जन्म देती हैं, वे परंपराओं, संस्कृतियों और लोगों जोकि अन्यथा पहुँच के बाहर हैं, तक पहुँचने में मदद करती है।

4. स्कूली पाठ्यचर्या में भाषा संबंधी अन्य मुद्दे

4.1 भूमिका

भाषा-शिक्षण संबंधी कार्यक्रमों को बहुभाषी संदर्भ में देखने की ज़रूरत है। बहुभाषिकता एक प्राकृतिक परिघटना है जिसका संज्ञानात्मक लचीलेपन और विद्वत उपलब्धि

के साथ सकारात्मक संबंध होता है। ज़रूरत इस बात की है कि पाठ्यचर्या निर्माता, पाठ्यपुस्तक लिखने वाले शिक्षक और माता-पिता/अभिभावक बहुभाषिकता की महत्ता को समझें ताकि वे बच्चों को अपने इर्द गिर्द मौजूद सांस्कृतिक और भाषिक विविधता के प्रति सुग्राही (सेंसिटाइज़) बनाएँ, और उन्हें अपने विकास के संसाधन के रूप में प्रयुक्त करने के प्रति प्रोत्साहित करें।

भाषा-शिक्षण पर योजना बनाने वाले इस बात पर सहमत हैं कि द्विभाषिकता पूरी स्कूली शिक्षा के दौरान बनाए रखी जाए। इसलिए, यह ज़रूरी है कि बच्चे के लिए जो भाषाएँ 'अन्य' की श्रेणी में आ सकती हैं, उनके विशिष्ट संदर्भों व आयामों को, अध्ययन और अधिगम के लिए आवश्यक शिक्षाशास्त्रीय-पद्धति विकसित करने के दौरान ध्यान में रखा जाना चाहिए।

हम पाठ्यचर्या निर्माताओं, पाठ्यपुस्तक लिखने वालों, शिक्षकों और माता-पिता/अभिभावकों का ध्यान अल्पसंख्यकों व आदिवासियों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं और विलुप्ति के कगार पर खड़ी भाषाओं की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं। ये भाषाएँ हमारी समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं और ज्ञान व्यवस्था का खज़ाना है और हमें उन्हें जीवंत रखने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। विद्यालयी पाठ्यचर्या में इनके लिए प्रावधान रखकर ही हम इस कार्य को संपन्न कर सकते हैं। विशेष तरजीह उर्दू को दी गई है, इसका कारण यह है कि यह भारतीय भाषाओं में विशिष्ट स्थान रखती है, क्योंकि यह भौगोलिक क्षेत्र-आधारित भाषा नहीं है जिसे वहाँ के लोग बचाने के लिए संघर्ष करते। यह किसी राज्य की भाषा नहीं है। हमने शास्त्रीय भाषाओं, ख़ासकर संस्कृत को सीखने की ज़रूरत पर भी इस खंड में बात की है। साथ ही भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में विदेशी भाषाओं को अपनाने की विशेषता रही है। इसे जारी रखने की हम पुरज़ोर वकालत करते हैं।

4.2 उर्दू

भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार उर्दू और हिंदी के बीच कोई आधारभूत अंतर नहीं है। दोनों की वाक्य संरचनाएँ एक-सी हैं। साथ ही फ़ोनोलॉजी, मार्फ़ोलॉजी और लेक्सिकन स्तर पर दोनों में बहुत कुछ साझा है। यह तो पिछले पचास वर्षों के दौरान हिंदी को संस्कृत और उर्दू को अरबी/फारसी के रंग में रँगने की ऐसी कोशिश चली की आज ये दोनों ही एक रेखा के दो छोरों पर पहुँचकर रह गए हैं। जहाँ ये पारस्परिक रूप से अबोधात्मक हो गए हैं, मुख्यत: लेक्सिकन में अंतर के कारण। जबकि सांकेतिक और सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर हिंदुस्तानी के इन दोनों ही रूपों का अत्यधिक महत्त्व है। हिंदी के साथ देवनागरी लिपि और उर्दू के साथ अरबी/फारसी लिपि को इस तरह से जोड़कर देखा जाता है कि हम सोच ही नहीं सकते कि इन्हें और अन्य तरीकों से भी लिखा जा सकता है। यह बड़े दु:ख की बात है कि हमारी आने वाली पीढ़ियाँ अरबी फारसी लिपि से दूर होती जा रही हैं और इस क्रम में भारतीय सभ्यता की अभिन्न धरोहर, जो इनके साथ साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपरा के रूप में जुड़ी हुई है, भी हमसे छूटती जा रही है। हमें भरसक प्रयत्न करना चाहिए कि इस तरह का सामाजिक रुझान पैदा हो जिसमें संरचना के स्तर पर एकसमान इन दोनों भाषाओं को दोनों ही लिपियों में प्रयुक्त किए जाने का चलन शुरू हो सके। इसकी शुरुआत हम ऐसी सामान्य रुचि की किताबों को लिखकर कर सकते हैं जिनमें दोनों ही लिपियों का प्रयोग हुआ हो। साथ ही कक्षा 3 से 5 तक दोनों लिपियों का परिचय कराने वाली अभ्यास पुस्तिकाएँ भी तैयार की जा सकती हैं (इस सुझाव के लिए हम कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, लॉस एंजेल्स के डॉ. ज्ञान महाजन के आभारी हैं)।

8वीं अनुसूची में शामिल की गई हिंदी सहित सभी भाषाएँ उन राज्यों में अल्पसंख्यक भाषा ही हो जाती है,

> उर्दू और हिंदी की वाक्य संरचना एक ही होती है साथ ही फ़ोनोलॉजी, मार्फ़ोलॉजी और लेक्सिकन के स्तर पर दोनों में बहुत कुछ साझा है... फिर भी ऐतिहासिक कारणों से हिंदुस्तानी के इन दोनों प्रकारों का काफ़ी महत्त्व है... और आज हमें उनकी अलग-अलग स्थितियों को स्वीकार करने की ज़रूरत है...

जिन राज्यों की ये मुख्य भाषाएँ हैं। आज जिस तरह से सामाजिक स्तर पर पलायन जारी है उससे प्रत्येक राज्य और ज़िला बहुभाषिक होता जा रहा है। ऐसे में संविधान की मूल भावना का अनुसरण करते हुए अल्पसंख्यक भाषाओं के लिए राष्ट्रीय स्तर पर नीति–निर्धारण की ज़रूरत है।

उर्दू (सिंधी के साथ) अपने आप में अकेली भाषा है जो देशभर में बोली जाती है, लेकिन किसी भी राज्य में यह बहुसंख्यक भाषा नहीं है। राष्ट्रीय स्तर पर जिस तरह इस पर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत महसूस की जा रही है, उस तरह की बात राज्य स्तर पर नहीं देखी जाती। राज्य स्तर पर यह भी अन्य अल्पसंख्यक भाषा की तरह की स्थिति में आ जाती है। इसकी समस्या भी उसी राष्ट्रीय स्तर के नीति निर्धारण के तहत सुलझ सकती है, धर्मनिरपेक्ष शिक्षा की पाठ्यचर्या में उर्दू को उसका उचित स्थान दिलाने के लिए सार्वजनिक नीतियों का मूल्यांकन और उर्दू की स्थिति का अनुवीक्षण, जिसमें प्राथमिक से लेकर वरिष्ठ माध्यमिक स्तर तक उर्दू माध्यम से शिक्षण और उर्दू शिक्षण के लिए उपलब्ध सुविधाओं का आकलन करना भी शामिल है, से एक उपयुक्त कार्यनीति विकसित करने के सतत प्रयास किए जाने चाहिए।

किसी भी क्षेत्र या समुदाय के शैक्षणिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए ज़रूरी है कि इसे ज़्यादा से ज़्यादा आधुनिक शिक्षा मुहैया हो, भारतीय संदर्भ में यह काम राज्य के जिम्मे आता है। राज्य सरकारों को प्रत्येक भाषा को शिक्षा व्यवस्था में पर्याप्त और ज़रूरी जगह देनी चाहिए, जो भारत के किसी भी क्षेत्र में रहने वालों की भाषा हो। ख़ासकर उर्दू सभी सरकारी और सरकार द्वारा सहायता प्राप्त स्कूलों तथा मान्यता प्राप्त शिक्षा बोर्ड से जुड़े विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर शिक्षण के माध्यम के रूप में अपनाई जानी चाहिए। उनके लिए जो इसे अपनी मातृभाषा कहते हैं।

4.3 अल्प, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाएँ

अल्प, अल्पसंख्यक और आदिवासी भाषाओं को बोलने वाले प्राय: अपनी भाषा से वंचित कर दिए जाने के शिकार होते हैं। जबकि हमें यह भली–भाँति जान लेना चाहिए कि अंग्रेज़ी सहित इस देश की प्रमुख भाषाएँ, इनके साथ रहकर ही फल–फूल सकती हैं न कि इनकी कीमत पर। यह धारणा कि एक भाषा का विकास दूसरी भाषा के विकास में भी सहायक होता है, इससे हम उम्मीद कर सकते हैं कि भाषिक विविधता वाले आदिवासी इलाकों के मामले में कुछ भाषाओं का विकास शेष भाषाओं को बल प्रदान कर सकता है, साथ ही इनको बोलने वालों को सचेतन रूप से इस ओर रुख़ करने के लिए प्रेरित भी।

एक भाषा का विकास दूसरी भाषा के विकास में भी सहायक होता है, इससे हम उम्मीद कर सकते हैं कि भाषिक विविधता वाले आदिवासी इलाकों के मामले में कुछ भाषाओं का विकास शेष भाषाओं को बल प्रदान कर सकता है।

यह प्रलेख इसलिए उम्मीद करता है कि ऐसा समय आएगा, जब महज बोली जाने वाली भाषाएँ (अलिखित) स्कूलों में जगह पाएँगी और अपना अलग वर्ण–विन्यास, व्याकरण और शब्दकोश विकसित करेंगी। भले ही इनके मानक रूप अनुपस्थित हों, वे साहित्यिक उद्यम के लिए उपलब्ध औज़ार बन सकेंगी, जो स्वतंत्र अभिव्यक्ति को सभी आयामों में विकसित होने का अवसर देता है और प्रत्येक भाषा में ज्ञान के आधार को मजबूत करता है।

यह उद्यम और आगे बढ़कर, सभी स्तरों की शिक्षा और जनसंचार में इन भाषाओं को नयी तरह की संप्रेषणकारी भूमिकाएँ व प्रकार्य सौंपकर, इन भाषाओं की स्थिति को ऊँचा उठाने के लिए उन्मुख होना चाहिए।

बहुत सारी भाषाएँ खतरे में हैं। बहुभाषिकतावाद को बनाए रखने के हमारे दावों के बावजूद कुछ भाषाएँ वास्तव में भारतीय–भाषिक मंच से गायब हो गई। एक भाषा को खोने का अर्थ है–इसके साथ संबद्ध पूरी की पूरी साहित्यिक व सांस्कृतिक परंपरा का नष्ट होना।

4.4 शास्त्रीय भाषाएँ

आज की सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाएँ अतीत से रोशनी पाती हैं और क्लासिकल भाषाएँ उनके वाहन का

काम करती हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था बहुत सारी शास्त्रीय भाषाओं के प्रति हमेशा से ही उदार रही है जिसमें तमिल, लैटिन, अरबी और संस्कृत शामिल हैं। लेकिन संस्कृत को ज़्यादा गंभीरता से लेने की ज़रूरत है, जैसा कि जवाहरलाल नेहरू (1949) ने कहा था कि– संस्कृत भाषा और साहित्य भारत का सबसे बड़ा खज़ाना है और वे यह भी विश्वास करते थे कि भारत की बौद्धिकता तब तक बनी रहेगी जब तक ये हमारे भारतीय लोगों के जीवन को प्रभावित करते रहेंगे।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था तंत्र के जनतंत्रीकरण से उन लोगों को भी संस्कृत पढ़ने का अवसर मिला, जो वर्षों से इससे दूर रखे गए थे । संस्कृत की भाषिक, सौंदर्यात्मक और वैचारिक परंपरा ने आधुनिक विश्व के लिए नए क्षितिजों को खोला। उदाहरण के लिए, पाणिनि (प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरणिक) और 'कंप्यूटेशनल लिंग्गुइस्टिक्स' के बीच एक मजबूत इंटरफेस खोजा जा सकता है।

संस्कृत को पढ़ने के साथ जो समस्या जुड़ी थी वह यह है कि इसे कर्मकांडों की या नैतिक मूल्यों को फैलाने वाली भाषा के रूप में लिया जाता रहा, इससे इसके सौंदर्यबोधात्मक पक्ष और विविध साहित्य भी नज़रअंदाज़ होते रहे। अद्यतन शोधों ने ऐसी कई दबी हुई आवाज़ों को सामने प्रस्तुत किया। इसने संस्कृत भाषा की कई परंपराओं का भेद खोला और उन्हें संदर्भ प्रदान किया । संस्कृत पठन–पाठन के शिक्षाशास्त्र में इसका बड़ा गंभीर प्रभाव पड़ेगा। आधुनिक भारतीय भाषा (एम. आई. एल.) के रूप में अब यह संभव हो गया है कि हम अपने पारंपरिक पाठ्यपुस्तकों के लेखकों को मना सकें कि अब केवल शास्त्रीय संस्कृत में ही नहीं बल्कि आम बातचीत के रूप में भी संस्कृत में वह लिखें, जो विद्यार्थी जीवन में प्रासंगिक हो।

> संस्कृत को कर्म–कांडों की या नैतिक मूल्यों को फैलाने वाली भाषा के रूप में लिया जाता रहा, इससे इसके सौंदर्यबोधात्मक पक्ष और विविध साहित्य भी नज़रअंदाज़ होते रहे। हाल के शोधों ने उच्च संस्कृति की अभिव्यक्तियों के नीचे दबे हुए स्वरों की उच्च किस्मों को सामने प्रस्तुत किया।

4.5 विदेशी भाषाएँ

यहाँ मातृभाषा का प्रयोग उन भाषाओं के लिए किया गया है जिन्हें बच्चा स्कूल आने से पहले सीखता है। इसमें घर, पड़ोस एवं साथियों की भाषा शामिल है। द्वितीय भाषा उसे कहा गया है जिसे बच्चा स्कूल में सीखता है, लेकिन जो उसके परिवेश का ही भाग है – परिवेश जो व्यापक होने की वज़ह से तात्कालिक नहीं होता।

लेकिन वे भाषाएँ जो कक्षाओं में पढ़ाई जाती हैं, और जहाँ उनको बोलने वाले, सीखने वालों के साथ न हों और अजनबी हों तो उन्हें विदेशी भाषाएँ कहा जा सकता है। मातृभाषाओं और अन्य भारतीय भाषाओं के सिवाय हमारी पाठ्यचर्या में विदेशी भाषा के रूप में जर्मन व फ्रेंच को भी जगह दी गई है। प्रत्येक नयी भाषा जगत के बारे में नयी जानकारी देती है और सीखने वाले के संज्ञानात्मक विकास में सहायक होती है। एक चेक कहावत है 'प्रत्येक नयी भाषा जो तुम सीखते हो तुम्हारे में नयी आत्मा को जोड़ती है।'

> चूँकि विदेशी भाषा, सीखने वाले के परिचित वातावरण में उपलब्ध नहीं होती, इसलिए इसके लिए मातृभाषा व द्वितीय भाषा को पढ़ाने के लिए विकसित तरीकों से भिन्न रणनीति की ज़रूरत पड़ती है। यह संभव है कि व्याकरण को पढ़ाने पर ध्यान धीरे–धीरे ज़्यादा केंद्रित होता जाए, जैसे–जैसे हम पहली भाषा से दूसरी भाषा की ओर बढ़े और अंतत: विदेशी भाषा की ओर।

चूँकि विदेशी भाषा, सीखने वाले के परिचित वातावरण में उपलब्ध नहीं होती, इसलिए इसके लिए मातृभाषा व द्वितीय भाषा को पढ़ाने के लिए विकसित तरीकों से भिन्न रणनीति की ज़रूरत पड़ेगी। प्रथम भाषा से विदेशी भाषा की यात्रा में यह संभव है कि व्याकरण को पढ़ाने पर ध्यान धीरे-धीरे ज़्यादा केंद्रित होता जाए। लेकिन ऐसा देखा गया है कि विदेशी भाषा के मामले में भी पुस्तकें पढ़ना ही ज़्यादा लाभप्रद हुआ है। जैसा कि विभिन्न चार्टों (परिशिष्ट–3) से स्पष्ट है कि विदेशी भाषा माध्यमिक या उच्च माध्यमिक स्तर पर ही परिचित करानी चाहिए।

चूँकि कॉग्नीटिवली एडवांस्ड लैंग्वेज प्रोफ़िशिएंशी (संज्ञानात्मक तौर पर उच्च भाषा क्षमता) एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित हो सकती है, इसलिए यही उचित है कि विदेशी भाषा तभी सिखाई जाए जब सीखने वाले ने संज्ञानात्मक परिपक्वता का एक निश्चित स्तर और एक या दो भाषाओं में सार्थक क्षमता स्तर प्राप्त कर लिया हो।

4.6 अन्य भाषाएँ पढ़ाना

अन्य भाषाओं को विषय के रूप में पढ़ाने और उन्हें शिक्षण का माध्यम बनाने के मामले में हमें ध्यान रखना होगा कि सीखने वाला जो भाषा प्रयुक्त करता है उससे इसकी भाषिक विविधता जितनी ज़्यादा होगी, सीखने वाले को उतनी ही कठिनाई होगी। विभिन्न भाषाओं के संस्कृतीकरण के मामलों में हम यही पाते हैं। पाठ्यपुस्तक में कृत्रिम तरीके से भाषा का प्रयोग ही साधारण स्तर पर सीखने वालों के लिए मुश्किल हो जाता है। इस संदर्भ में एक बहुत ही प्रभावशाली शिक्षा शास्त्रीय अभ्यास है–ज्ञात से अज्ञात की ओर जाना। दुर्भाग्य से हम प्राचीन से आधुनिक की ओर जा रहे हैं।

5. बहुभाषिकता और शैक्षिक संप्राप्ति

5.1 भूमिका

बहुभाषिकतावाद भारतीय अस्मिता का अभिन्न अंग है। यहाँ तक कि दूर-दराज़ स्थित गाँव में तथाकथित 'एक भाषा' बोलने वाला एक ऐसे शाब्दिक भंडार (verbal repertoire) को नियंत्रित करता है, जो उसमें कई तरह की संवादात्मक परिस्थितियों का सामना करने की योग्यता प्रदान करता है। वस्तुतः भारतीय भाषिक व सामाजिक भाषिक मैट्रिक्स में भारतीय भाषिक स्वरों की बहुलता एक दूसरे से परस्पर संवाद करती है, जो कि कई तरह के साझे भाषिक व सामाजिक भाषिक खासियतों पर खड़ी होती है। दूसरी तरफ, हाल के कई अध्यनों ने दिखलाया है कि द्विभाषिकता का संज्ञानात्मक विकास व विद्वत्-उपलब्धि से गहरा सकारात्मक संबंध है।

5.2 भारत एक बहुभाषी देश के रूप में

भारत एक बहुभाषी देश है- यह एक जानी मानी बात है। 1971 की जनगणना जिसे इस मामले में सबसे ज़्यादा आधिकारिक माना जा सकता है, ने हमारे देश में कुल 1652 भाषाओं की पहचान की जो पाँच विभिन्न भाषा-परिवारों के तहत आते हैं। प्रिंट मीडिया में 87 से ज़्यादा भाषाएँ प्रयुक्त होती हैं, रेडियो में 71 भाषाएँ और प्रशासन के स्तर पर 13 विभिन्न भाषाएँ प्रयुक्त होती हैं। लेकिन बड़े दुःख की बात है कि केवल 47 भाषाएँ ही स्कूलों में पठन-पाठन के माध्यम के रूप में प्रयोग की जाती हैं। हम आशा करते हैं कि इस आधार पत्र के बाद ज़्यादा से ज़्यादा मातृभाषाएँ स्कूलों में माध्यम के रूप में प्रयुक्त की जाएँगी। इतनी विविधता के बावजूद कई भाषिक व सांस्कृतिक तत्व भारत को एक ही भाषिक एवं सामाजिक भाषिक क्षेत्र के रूप में बाँधते हैं। व्युत्पत्ति के आधार पर काफ़ी अलग व भौगोलिक दृष्टिकोण से विभाजित भाषाओं में संस्कृति का सामान्य व्याकरण पाया गया है, जो भाषा के द्वारा ही व्यक्त होता है। पंडित (1969, 72, 88), पटनायक (1981, 1986, 1986 अ, 1990), श्रीवास्तव (1979, 88), दुआ (1985) और खूबचंदानी (1983, 88) ने भारतीय बहुभाषिकतावाद पर गंभीर काम किए हैं। पंडित ने दिखलाया है कि कैसे भाषिक व्यवहार की विविधता - बहुभाषिक समाजों में संप्रेषण, को बाधित करने के बजाय सहायता ही प्रदान करती है।

बहुभाषिकतावाद पर हुए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि हमारी शिक्षा-व्यवस्था को इसे दबाने के बजाय बनाए रखने और प्रोत्साहित करने का भरपूर प्रयास करना चाहिए (देखें क्रहॉल 1992, हेफ और सहयोगी 1995 और अन्य)। पटनायक (1981) ने दिखलाया है कि कैसे हमारी शिक्षा व्यवस्था ने हमारे समाज की सबसे बड़ी खासियत-बहुभाषिकतावाद से मिलते आ रहे फ़ायदों को दबाने/कमज़ोर करने का काम किया है। 'अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत' वाली स्थिति से बचना हो तो तत्काल हमारी शिक्षा-व्यवस्था के योजनाकारों को शिक्षा में भाषा की उक्त खासियत (की

महत्ता को समझते हुए) को केंद्रीय स्थान देने की पहलकदमी करनी होगी।

जैसा कि ईलिच (1981) ने कहा है कि हमें हाशिए पर अवस्थित, आदिवासी और विलुप्तप्राय भाषाओं को बचाने और उनके सशक्तीकरण का भरपूर प्रयास करना होगा। इस संबध में सकारात्मक प्रयास करने की आवश्यकता है । हमें उस घड़ी के लिए इंतजार नहीं करना चाहिए जब इन भाषाओं को प्रयोग करने वाले लोग आकर हमसे कहें कि हमारी भाषाओं को भी जीवित रहने का अधिकार है। ईलिच के अनुसार हम आदिवासी भाषाओं को लगभग विलुप्त हो जाने की परिस्थिति को उत्पन्न करने के लिए लाखों डॉलर खर्च करते हैं और फिर बाद में कुछ राशि का निवेश करते हैं – उन्हें 'आश्चर्य या गर्व की वस्तु' घोषित करने में। पटनायक (1981) ने ज़ोर देकर कहा है कि यदि हम चाहते हैं कि ऐसा जनतंत्र पनपे जिसमें सभी की भागीदारी संभव हो सके तो हमें प्रत्येक बच्चे को उसकी भाषा में सुनना होगा।

इस संदर्भ में त्रिभाषा-सूत्र को देखा जाना चाहिए जिसे कई शिक्षा आयोगों ने लागू करने की सिफ़ारिश की। यह दुखद बात है कि देश भर में कहीं इस सूत्र को सच्ची लगन से लागू करने के प्रयास नहीं दिखाई देते। इसलिए हमने आधार पत्र में इस बात को बार-बार दुहराया है कि त्रिभाषा-सूत्र को कार्यान्वित करने के लिए कड़े नियमों के बजाय बहुभाषिकतावाद को बनाए रखने व इसे जीवंतता प्रदान करने का प्रयास किसी भी भाषा-योजना का केंद्र होना चाहिए।

> ...यदि हम चाहते हैं कि ऐसा जनतंत्र पनपे जिसमें सभी की भागीदारी संभव हो सके तो हमें प्रत्येक बच्चे को उसकी भाषा में सुनना होगा... त्रिभाषा-सूत्र को कार्यान्वित करने के लिए कड़े नियमों के बजाय बहुभाषिकतावाद को बनाए रखने व इसे जीवंतता प्रदान करने का प्रयास किसी भी भाषायोजना का केंद्र होना चाहिए।

यू.एस. में नेशनल ऐसोसिएशन ऑफ़ बाइलिंगुअल एजुकेशन ने स्पष्ट किया है कि द्वि-भाषीय शिक्षण के कई फ़ायदे देखने को मिले हैं। मसलन अकादमिक उपलब्धि में सुधार, स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की संख्या में कमी, शिक्षा में सामुदायिक संलग्नता में वृद्धि, विद्यार्थियों की अनुपस्थिति में गिरावट और विद्यार्थियों के आत्मसम्मान में वृद्धि (हैकुता 1986)

5.3 द्विभाषिकतावाद और विद्वत् उपलब्धि

बहुत समय तक यह विश्वास किया जाता रहा कि द्विभाषिकता का संज्ञानात्मक वृद्धि और शैक्षिक संप्राप्ति पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है (जैसे – जेसपर्सन 1922, सायर 1923 और अन्य ने कहा)। सायर (1923) ने दिखलाया है कि 7-14 वर्ष की आयु के वे बच्चे जो दोनों भाषाएँ – वेल्स एवं अंग्रेज़ी – बोलते हैं का एक भाषा बोलने वाले अपने ही सहपाठी की तुलना में आई. क्यू. (बुद्धिलब्धि) स्तर कम होता है।

दूसरी तरफ़, हाल में कुछ अध्ययनों (जैसे पील और लैंबर्ट 1962, गार्डनर और लैंबर्ट 1972, कमिंस और स्वेन 1986 और अन्य) ने दावा किया है कि द्विभाषिकता, संज्ञानात्मक लचीलेपन व विद्वत् उपलब्धि में सकारात्मक रिश्ता है। दो भाषा बोलने वाले बच्चे न केवल अन्य भाषाओं पर अच्छा नियंत्रण रखते हैं, बल्कि अकादमिक स्तर पर भी वे ज़्यादा रचनात्मकता दिखाते हैं, साथ ही उनमें ज़्यादा सामाजिक सहिष्णुता भी पाई गई

> दो भाषा बोलने वाले बच्चे न केवल अन्य भाषाओं पर अच्छा नियंत्रण रखते हैं, बल्कि शैक्षिक स्तर पर भी वे ज़्यादा रचनात्मक होते हैं, साथ ही उनमें ज़्यादा सामाजिकता और सहिष्णुता भी पाई गई है। भाषिक ख़ज़ाने की व्यापक व्यवस्था पर नियंत्रण उन्हें विविध प्रकार की एवं विविध स्तर की सामाजिक परिस्थितियों से कुशलतापूर्वक जूझने में सहायक होता है। साथ ही इस बात के पक्के सबूत मिले हैं कि द्विभाषी बच्चे विविध सोच में ज़्यादा अच्छा प्रदर्शन करते हैं।

हैं। भाषिक खज़ाने की व्यापक व्यवस्था पर उनका नियंत्रण उन्हें विविध प्रकार की एवं विविध स्तर की सामाजिक परिस्थितियों से ज़्यादा अच्छी तरह जूझने में सहायक होते हैं। साथ ही इस बात के पक्के सबूत मिले हैं कि द्विभाषीय बच्चे विविध सोच में ज़्यादा अच्छा प्रदर्शन करते हैं। इसलिए स्कूली पाठ्यचर्या में द्विभाषिकता को प्रोत्साहित करने की ज़रूरत है। हमें यह मालूम होना चाहिए कि विविध भाषिक कुशलताएँ अवचेतन स्तर पर आसानी से एक भाषा से दूसरे भाषा में रूपांतरित हो जाती हैं और इसके लिए किसी भी प्रकार के अतिरिक्त प्रयास की ज़रूरत नहीं होती। कमिंस (1976, 81) और कमिंस व स्वेन (1986) ने आधारभूत अंतर्वैयक्तिक भाषिक कुशलता (बेसिक इंटरपर्सनल कम्युनिकेशन स्किल्स – बी.आई.सी.एस.) और संज्ञानात्मक स्तर पर उच्च भाषा दक्षता (कॉगनिटिव एडवांस्ड लैंग्वेज प्रोफ़िसियेंसी–सी.ए.एल.पी.) के बीच अंतर किया है। बी.आई.सी.एस. के साथ जो भाषिक क्षमता जुड़ी है – वह संज्ञान के स्तर पर अग्राह्य और संदर्भों की विविधता वाली परिस्थिति में-अच्छे प्रदर्शन के संबंध कौशलों को शामिल कराती है। साथियों के साथ बोली जाने वाली नज़दीकी भाषा बी.आई.सी.एस. की परिधि में आती है।

ऐसा लगता है कि बी.आई.सी.एस. स्तर की क्षमता हासिल करने के लिए प्रत्येक भाषा में नए सिरे से सीखना पड़ता होगा। लेकिन भारत जैसे बहुभाषी समाज में यह क्षमता स्वभावत: अपने आप विकसित होती जाती है। सी.ए.एल. स्तर की क्षमता की ज़रूरत उच्च संज्ञानात्मक स्तर वाली परिस्थिति में पड़ती है। इसे प्रशिक्षण द्वारा ही विकसित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी माध्यमिक स्तर के बच्चे से किसी ऐसे विषय पर लिखने को कहा जाए जिसके बारे में वह नहीं जानता हो या किसी समाचार पत्र के संपादकीय को पढ़कर उसकी आलोचना करने को कहा जाए तो उसे अपनी सी.ए.एल.पी. क्षमता का इस्तेमाल करना पड़ सकता है और ये क्षमताएँ जैसा कि हमने कहा है – एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित होती रहती हैं।

5.4 बहुभाषिकतावाद को बढ़ावा देने की ज़रूरत

भारत जैसे देश में सामाजिक सौहार्द्रता तभी संभव है जब लोग एक दूसरे की भाषा और संस्कृति को सम्मान दें। इस प्रकार का सम्मान ज्ञान के बिना संभव नहीं है। अज्ञानता भय, घृणा और असहिष्णुता को जन्म देती है और राष्ट्रीय अस्मिता की अखंडता के रास्ते में रोड़े अटकाने का कार्य करती है। प्रत्येक राज्य में एक वर्चस्व प्राप्त भाषा के साथ ही नस्लगत (समुदायगत) रुख व निष्ठा का पनपना स्वाभाविक है। यह लोगों और विचारों के स्वतंत्र आवागमन को तो रोकता ही है, साथ ही रचनात्मक, नवाचार आदि को दबाता है और समाज के आधुनिकीकरण को कुंद कर देता है। अब जबकि हम पाते हैं कि बहुभाषिकता, संज्ञानात्मक विकास व शैक्षणिक संप्राप्ति के बीच सकारात्मक जुड़ाव है – तो यह अत्यंत ज़रूरी है कि स्कूलों में बहुभाषी शिक्षण को प्रोत्साहित किया जाए।

6. विधियाँ

6.1 भूमिका

भाषा और सीखने (भाषिक और अधिगम) से संबंधित सिद्धांतों ने समय के साथ-साथ इतनी सारे विधियाँ उत्पन्न की हैं कि आश्चर्य होता है बात चाहे मातृभाषा सीखने की हो या दूसरी भाषा या फिर विदेशी भाषा सीखने की। इनमें से अधिकतर विधियों का विकास द्वितीय भाषा को सीखने के संदर्भ में ही हुआ। हमारा सरोकार यहाँ मातृभाषा, द्वितीय या तृतीय भाषा भर से नहीं, बल्कि शास्त्रीय और विदेशी भाषा पढ़ाने से भी है, वह भी विभिन्न संदर्भों में। जो विधियाँ विकसित हुई हैं उनमें से प्रमुख हैं- पारंपरिक व्याकरण अनुवाद विधि, प्रत्यक्ष तरीका, ऑडियो-लिंगुअल एप्रोच, कम्युनिकेटिव एप्रोच (बातचीत-आधारित संप्रेषणात्मक विधि), कंप्यूटर-एडेड लैंग्वेज टीचिंग (सी.ए.एल.टी), कॉम्युनिटी लैंग्वेज लर्निंग (सी.एल.एल.), साइलेंट वे, सजेस्टोपेडिया और टोटल फीजिकल रिस्पांस (टी.पी.आर.) और द्वितीय-भाषा सीखने के लिए निर्धारित क्राषेन का मॉनिटर

व शूमैन एकल्चरेशन मॉडलों से विकसित हुए तरीके (उदाहरण के लिए देखें–नागराज 1996, लिटिलवुड 1981, ब्रमफिट 1980, ब्रमफिट एवं जॉनसन 1979, एंथोनी 1972)

6.2 सीमाएँ और सबक

उपरोक्त बताई गई सभी विधियों के अपने–अपने गुण एवं दोष हैं। हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इनमें से प्रत्येक का, सिद्धांत व व्यवहार के स्तर पर खास ऐतिहासिक संदर्भ में और खास ज़रूरतों को पूरा करने के क्रम में, विकास हुआ। व्याकरण–अनुवाद (ग्रामर–ट्रांसलेशन) तरीका व्यवहारवादी- मनोविज्ञान और संरचनावादी भाषा विज्ञान के तहत औपनिवेशिक ताकतों की ज़रूरत पूरा करने के क्रम में जन्मा और पनपा। कुछ भी हो, यह तरीका हमें यह ज़रूर बताता है कि कैसे एक साहित्यिक भाषा सीखने के लिए केवल विषय–वस्तु तथा पूर्णता लिए हुए पाठ पर होना चाहिए। यदि आज हम इस विधि को अपनाएँ तो इसे कई स्तरों पर सुधारना तो पड़ेगा ही, साथ ही हमें सीधे, ऑडियो–लिंगुअल और कम्युनिकेटिव एप्रोच (संप्रेषणात्मक विधि), से सीखे पाठों को ध्यान में रखना पड़ेगा, ताकि सीखे जा रहे भाषा के 'स्पोकेन' (वाक्) वाला पक्ष छूट न जाए। साइलेंट वे, सजेस्टोपेडिया और टी.पी.आर. जैसे तरीके विशिष्ट ज़रूरतों को पूरा करने के लिए विकसित हुए थे। शोधों से पता चलता है कि टी.पी.आर. भाषा सीखने की आरंभिक अवस्था में काफ़ी सफल हो सकती है, ख़ासकर सीखने वाले की हिचक दूर करने के लिए।

6.3 उचित विधियों की ओर

इसमें कोई शक नहीं कि प्रत्येक शिक्षक सामाजिक–मनोवैज्ञानिक, भाषिक और कक्षा की विविधता के अनुसार पढ़ाने का अपना विशिष्ट तरीका विकसित कर लेता है। नयी पाठ्यचर्या को शिक्षक के सशक्तीकरण पर ध्यान देना होगा, ताकि वह कक्षा में अपने स्तर पर पहलकदमी कर सके । कुछ मुख्य बातें जिन पर गौर करना ज़रूरी है, निम्नलिखित हैं

(क) **सीखने वाला:** पढ़ाने का कोई भी तरीका हो, शिक्षार्थी को कोरी स्लेट नहीं समझना चाहिए। उसे पठन–पाठन प्रक्रिया के केंद्र में होना चाहिए। उसकी संज्ञानात्मक सामर्थ्य व अभिरुचियों को गौर करने के उपरांत शिक्षक को पढ़ाने के उचित तरीके पर कार्य करना चाहिए।

(ख) **रुख:** शिक्षक के लिए सभी विद्यार्थियों के प्रति सकारात्मक रुख अपनाना ज़रूरी है। जाति, रंग, धर्म या जेंडर के आधार पर कोई भेदभाव किए बिना व्यवहार से बच्चे पठन–पाठन के प्रति उत्साहित होंगे और सीखने की प्रक्रिया में बढ़–चढ़कर हिस्सा लेंगे। साथ ही, शिक्षक का अच्छा व्यवहार बच्चे में तनाव/चिंता के स्तर को भी बढ़ने नहीं देता, जो सीखने की प्रक्रिया में बाधक होता है।

(ग) **इनपुट :** क्राषेन (1981, 1982) को ध्यान में रखते हुए हम सलाह देंगे कि इनपुट ज़्यादा समृद्ध), रोचक व चुनौतीपूर्ण होना चाहिए, साथ ही ऐसे विषय के इर्द–गिर्द बुना होना चाहिए जो बच्चों के समूह में साथ–साथ सीखने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे। आधुनिक तकनीक इस मामले में मददगार साबित हो सकती है।

> शिक्षक को धीरे–धीरे बच्चे की संज्ञानात्मक क्षमता और रुचियों को जानने की ज़रूरत होगी ताकि इसके अनुसार ही वह अपने भाषा–शिक्षण के तरीकों को बदल सके।

(घ) **बहुभाषिकता एक संसाधन के रूप में :** जैसा कि हमने इस आधार पत्र में कहा है, कक्षा में मौजूद बहुभाषिकता का भाषा–शिक्षण के लिए अच्छे प्लेटफॉर्म के रूप में उपयोग हो सकता है। बच्चों के सहयोग से कक्षाओं में बहुभाषिकतावाद प्राप्त करने का एक सुग्राही विश्लेषण शिक्षकों और शिक्षण में बहुभाषिकता के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में सहायक होगा। इस विषय में अनुवाद एक अत्यधिक सशक्त माध्यम सिद्ध हो सकता है।

(ङ) **जेंडर और पर्यावरण के मुद्दे:** यह ज़रूरी है कि भाषा–शिक्षण के आधुनिक तरीके बच्चों को

जेंडर और पर्यावरण के प्रति जागरूक करें। इन मुद्दों को सावधानी के साथ, और कोमल व संवेदनशील शिक्षण-पद्धतियों के माध्यम से सामने लाया जाना चाहिए।

(च) **मूल्यांकन:** मूल्यांकन को पठन-पाठन का ही हिस्सा होना चाहिए । जैसे ही हम सामान्य कक्षा-प्रक्रिया को परीक्षा या जाँच के लिए रोकते हैं, विद्यार्थी में तनाव पैदा होता है, वे चिंतित रहने लगते हैं और उन्हें पुन: सामान्य मूड में आने में मुश्किल होती है।

7. सामग्री

7.1 सामग्री के प्रकार

कोई भी 'चीज' जो भाषा सीखने में सहायक हो, सामग्री कही जा सकती है। वे भाषिक, दृश्य, श्रव्य या काइनेस्थेटिक हो सकते हैं, या प्रिंट, प्रदर्शन या डिसप्ले के माध्यम से प्रस्तुत किए जा सकते हैं, या कैसेट, सीडी.-रोम, डी.वी.डी. अथवा इंटरनेट के माध्यम से। वे सूचनापरक, प्रयोगपरक, उद्यतपरक (इलिसिटैटिव) और खोजपरक हो सकते हैं, क्योंकि वे क्रमश: भाषा के बारे सूचना देते हैं, भाषा से परिचय कराते हैं, भाषा-प्रयोग करने को उद्यत करते हैं और भाषा-प्रयोग के क्षेत्र में अन्वेषण कराते हैं (टॉमलिनसॉन 2001: 66)।

7.2 पाठ्यपुस्तक

किसी भी कक्षा के लिए कोई भी पाठ्यपुस्तक आदर्श नहीं हो सकती। यह शिक्षक का दायित्व है कि वह सीखने वाले और सामग्री के बीच संतुलन बनाए रखे और इसके लिए ज़रूरी है कि उसमें सामग्री के निर्माण से लेकर उपलब्ध सामग्री तक को बच्चों के स्तर के अनुरूप ढालने की क्षमता हो। प्रत्येक शिक्षक सामग्री का निर्माण कर सकता है और इसलिए उसे पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त आवश्यक सामग्री बनानी चाहिए।

पाठ्यपुस्तकों के पक्ष में राय देने वालों का कहना है कि यह एक तरह की संगति एवं क्रमिकता लिए होती है और विद्यार्थी और शिक्षक दोनों के लिए एक निर्धारित समय-सीमा के भीतर रहते हुए एक लक्ष्य प्रस्तुत करती है। जबकि कई शोधकर्ताओं का मानना है कि सभी की ज़रूरतें एक ही तरह की नहीं होती, पाठ्यपुस्तकें इन विविधताओं को नज़रअंदाज़ कर एकसमान पाठ्यक्रम को जबरन लादती हैं और शिक्षकों को अपनी तरफ़ से किसी भी तरह का निर्णय लेने के अधिकार को छीनती हैं (ऑलराईट 1981: लिटिलजॉन 1992: हचिंसन और टोरेस 1994)। यह बड़े दु:ख की बात है कि भाषा की पाठ्यपुस्तक ज़्यादा रोचक व चुनौती-भरी होने के बजाय सामान्यत: ऊबाऊ एवं जड़ता लिए होती है। प्राथमिक स्तर और उससे पूर्व की भाषा की पाठ्यपुस्तकें खासकर ज़्यादा गंभीरता व संवेदना से लिखने की ज़रूरत है। इन्हें संदर्भपरक स्तर पर समृद्ध और सीखने वाले की रचनात्मकता को उचित चुनौती देने वाला होना चाहिए। इनमें केवल कविताएँ व कहानियाँ नहीं, बल्कि विधाओं एवं विषयों के एक बड़े फलक को होना चाहिए। साथ ही ऐसे अभ्यास-प्रश्न भी होने चाहिए जिनमें अत्यंत सूक्ष्म अवलोकन व विश्लेषण की ज़रूरत पड़े और जो अंतत: मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति के सौंदर्यपरक संश्लेषण की ओर अग्रसर करे। उदाहरण, नक्शे व डिजाइन पाठ्यपुस्तकों के अभिन्न अंग होते हैं। चलन यह है कि पाठ्यपुस्तकों को लिख लिए जाने के बाद चित्रकारों को दिया जाता है। परिणाम होता है विषय-वस्तु और चित्र/उदाहरणों के बीच कोई मेल ही नहीं पाया जाता। होना यह चाहिए कि पाठ्यपुस्तक लेखकों, नक्शे/ख़ाका बनाने वाले पेशेवरों और चित्र प्रस्तुत करने वालों को शुरू से ही एक साथ काम करना चाहिए और इस ग्रुप में से एक छोटे से दल को पाठ्यपुस्तक उत्पादन के साथ जुड़ जाना चाहिए। सबसे विध्वंसक है किसी एक भाषा में पाठ्यपुस्तक तैयार करने के बाद दूसरी भाषाओं में उसी विषय के लिए उक्त पाठ्यपुस्तक को अनूदित करना। वस्तुत: भाषा, सोच और संस्कृति के बीच के जिस संबंध को हम उद्घाटित करना चाह रहे हैं, वह वास्तव में एक मज़ाक सा ही है।

सभी प्रकार के तकनीकी प्रयासों के बावजूद भी

हम जानते हैं कि वस्तुत: साधारण बच्चे के लिए सीखने के स्रोत के रूप में पाठ्यपुस्तक ही प्रमुख स्रोत बनी रहेंगी। इसलिए यह ज़रूरी है कि इसे बहुत ही ध्यान से बनाया जाए। पाठ्यपुस्तक-निर्माण की प्रक्रिया में विद्यार्थी और अध्यापक के साथ लगातार जाँच (trialling) होती रहनी चाहिए। प्रतिपुष्टि (Feedback) की व्यवस्था विकसित कर हम पाठ्यपुस्तकों में लगातार सुधार ला सकते हैं।

7.3 पृथक् भाषा शिक्षण बनाम संप्रेषणात्मक शिक्षण

अधिकांश पाठ्यपुस्तकें भाषा-मात्र को सीखने व अभ्यास करने पर केंद्रित होती हैं । अधिकतर पाठ्यपुस्तकें उस अधिगम का अनुसरण करती हैं जिसमें शिक्षण आधारित आधाररूप के लिए संप्रेषणात्मक शिक्षण को सम्मिलित किया गया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि भाषा के क्रमिक लेकिन पृथक् पक्षों को सीखकर विद्यार्थी का आत्मविश्वास जागेगा और उन्नति का बोध होगा। लेकिन वे पाठ्यपुस्तक लेखक जो क्राषेन (1982, 1988) आदि जैसे शोधकर्ताओं के सिद्धांतों से प्रभावित हैं, ने ऐसी सामग्रियाँ निर्मित की हैं जिनका उद्देश्य संप्रेषणात्मक क्रियाकलापों जैसे- बहस, परियोजना, खेल, स्वाँग और नाटक आदि के माध्यम से संवाद क्षमता के अनौपचारिक अभिग्रहण को सह्य बनाना (देखें ला डोउस्से 1983; क्लीपेल 1984)।

कुछ शोधकर्ता अभ्यास या पाठ के आधार पर भाषा की अनुभूति पर बल देते हैं (देखें जे. विलिस 1996), तो कुछ अनुभव के साथ-साथ भाषा के प्रति जागरूकतापरक कार्यकलापों पर भी बल देते हैं। (टॉमलिनसॉन 1994)।

7.4 सामग्री की प्रकृति : आधिकारिक बनाम अन्य

सामग्री की प्रकृति कैसी हो, इस पर पिछले कुछ समय से विचार होने लगा है। अधिकांश पुस्तकें जो सीखने के लिए तैयार की जाती हैं उन उदाहरणों का प्रयोग करती हैं, जो किसी खास समय में पढ़ाए जा रहे विषय-वस्तु के भाषिक पक्ष पर केंद्रित होते हैं। चुने गए उदाहरण प्राय: छोटे और आसान बनाए जाते हैं जिसकी बहुत कीमत चुकानी पड़ती है। प्रचुरता या शब्द बाहुल्य जोकि किसी भी प्राकृतिक भाषा का जुड़ा हुआ हिस्सा होता है, वह उससे दूर हो जाती है और पाठ्य कृत्रिम, अर्थहीन और जटिल हो जाता है।

> जो कोई सीखने वालों को भाषा से अर्थपूर्ण परिचय कराना चाहते हैं, वे उन आधारिक पाठ्यपुस्तकों को चुनते हैं, जो दैनंदिन जीवन में प्रयुक्त भाषा को प्रस्तुत करते हैं। ये पुस्तकें ज़रूरी नहीं कि ख़ासकर भाषा-शिक्षण के लिए तैयार की गई हों।

इसके शोधकर्ताओं ने इस बात पर बल दिया है कि प्रामाणिक सामग्री प्रोत्साहन का काम करती हैं। (बैकोन और फिनमैन 1990; कुओ 1993) इस प्रामाणिक सामग्री की कट्टरता की आलोचना करते हैं। हम यह सुझाव देते हैं कि पाठ्यपुस्तक लेखकों को अधिकाधिक पाठों का प्रयोग करना चाहिए। उन्हें उनसे खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। यदि उन्हें लगता है कि बदलाव ज़रूरी है तो पहले लेखक की स्वीकृति लेनी चाहिए। जहाँ तक अभ्यासों और गतिविधियों की बात है पाठ्यपुस्तक लेखक वहाँ निश्चित रूप से नवाचारी और रचनात्मक भूमिका निभा सकते हैं।

7.5 विषयवस्तु बनाम अन्य विषय

यद्यपि किसी रूप में नियंत्रण (सेंसर) करना वांछित हो सकता है, अधिकतर शोधकर्ता यह मानते हैं कि शिक्षार्थियों को विषयवस्तु या विषय बता दिए जाने चाहिए इससे प्रेरित होकर उन्हें सीखने में सुविधा होगी। सामग्री को शिक्षार्थियों को सामाजिक रूप से संवेदनशील बनाने वाला होना चाहिए ताकि वे नशा, जेंडर, एड्स, विवाहपूर्व संबंधों, हिंसा, राजनीति इत्यादि मुद्दों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कर सकें। इस प्रकार सामग्री धीरे-धीरे स्थानीय संस्कृतियों से निकटवर्ती संस्कृतियों और उसके बाद विश्व संस्कृतियों में बदल जाएगी।

7.6 सामग्री का मूल्यांकन

कोई भी सामग्री सदैव और प्रत्येक के लिए उपयोगी नहीं है। किसी भी सामग्री के मूल्यांकन से पूर्व मानदंडों की पहचान किए जाने की आवश्यकता है। हाल ही में शिक्षकों की सहायता के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त सामग्री पर कार्य अनुसंधान संचालित करने (एज और रिचर्ड 1993; जॉली और बोलिथो 1998) तथा पूर्व-प्रयोग में प्रयोग करने, प्रयोग के दौरान प्रयोग करने और बाद के प्रयोग के मूल्यांकन करने में प्रयुक्त साधनों को विकसित करने के प्रयास किए गए। इलिस 1984, 1996, 1998)। वास्तव में, महत्त्वपूर्ण यह है कि नयी सामग्री को तैयार करने के लिए लगातार मार्गदर्शिकाओं को समृद्ध किया जाए। उदाहरण के लिए, यह लगातार स्पष्ट होना चाहिए कि पाठ्यपुस्तकों को न केवल विभिन्न विषयवस्तुओं के लिए अपितु विभिन्न भाषाओं के लिए स्थान उपलब्ध करवाना चाहिए। विशेषरूप से भारत के संदर्भ में हम महसूस करते हैं कि शिक्षकों और सीखने वालों के लिए भाषा पाठ्यपुस्तकों में हमारी भाषायी और सांस्कृतिक विरासत की विभिन्नता और समृद्धि को प्रस्तुत करने के प्रयास किए जाने चाहिए। इसके साथ ही विभिन्न राज्यों की भाषाओं के पाठ सम्मिलित करने के साथ-साथ भारत का भाषायी नक्शा उपलब्ध करवाना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो सकता है।

7.7 सामग्री लेखक कौन हों ?

सामग्री लेखक शिक्षक और शिक्षक-प्रशिक्षक हो सकते हैं जो शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के संपर्क में हैं। सीखने की सामग्री को विविधता में प्रस्तुत करने के लिए महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के भाषा शिक्षकों, भाषाविदों और नवाचारी गैर सरकारी संगठनों को इन शिक्षकों को सहयोग प्रदान करना चाहिए। यह असामान्य नहीं है कि शिक्षकों और शिक्षार्थियों द्वारा संयुक्त रूप से तैयार सामग्री उनके लिए तथा जूनियर कक्षाओं के लिए सीखने की सामग्री बन जाएगी। वास्तव में स्थानीय शब्दकोष, पत्रिकाएँ, लोककथाएँ और गीत, मानव जाति के वृत्तांत, वृत्तचित्र इत्यादि कक्षाओं में आदान-प्रदान के प्रभावशाली रूप बन जाते हैं। हमारे अनुभव बताते हैं कि अत्यधिक प्रभावशाली सामग्री कार्यशालाओं में तैयार होती है जिनमें शिक्षक, शिक्षक-प्रशिक्षक और विश्वविद्यालय के शिक्षाविद् एक साथ कार्य करते हैं और नियमित आधार पर कक्षाओं में अपनी सामग्री का परीक्षण करते हैं।

7.8 एकीकृत कौशलों का विकास

यदि हम दैनिक जीवन में अपने चारों ओर देखें तो हम महसूस करते हैं कि हम एक साथ ही कई कौशलों का इस्तेमाल करते हैं न कि अलग-अलग।

> ...पाठ्यपुस्तकों को न केवल विभिन्न विषय-वस्तुओं के लिए स्थान उपलब्ध करवाना चाहिए अपितु विविध भाषाओं के लिए भी... शिक्षकों और प्रशिक्षकों द्वारा संयुक्त रूप से तैयार की गई सामग्री उनके लिए तथा जूनियर कक्षाओं के लिए सीखने की सामग्री बन जाती है। वास्तव में स्थानीय शब्दकोष, पत्रिकाएँ, लोककथाएँ और गीत, मानव जाति के वृत्तांत, वृतचित्र इत्यादि कक्षाओं में आदान-प्रदान का प्रभावशाली रूप बन जाते हैं।

अत: शिक्षकों का कर्तव्य है कि विद्यार्थियों को सीखी हुई भाषा में 'संप्रेषणात्मक रूप से सक्षम' बनाए। पाठ्यपुस्तकें हमारे दैनिक जीवन के कार्यों के निष्पादन की स्थिति पर केंद्रित होनी चाहिए इससे भाषा कौशलों का प्राकृतिक सम्मिलन हो सकता है। चूँकि एकीकृत कौशल सामग्री बच्चों को आधिकारिक और वास्तविक कार्यों में लगाए रखेगी ऐसी संभावना है, इससे उनका अभिप्रेरण स्तर बढ़ेगा। वे एक मूलाधर महसूस करेंगे कि इसके पीछे उन्हें क्या करने के लिए कहा जा रहा है (मैकडोनोघा और शॉ 1993, 2003-04)।

8. शिक्षक

8.1 भूमिका

कक्षा ऐसी जगह है जहाँ विद्यार्थी, शिक्षक और पाठ के बीच कई तरह के जटिल स्तरों पर संवाद होता है और

इस संवाद में शिक्षक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं और निभाने की ज़रूरत भी है। हमारे अनुसार पेशेवर-प्रशिक्षित और सामाजिक रूप से संवेदनशील शिक्षकों का कोई विकल्प नहीं हो सकता। केंद्र सरकार व राज्य सरकारों की तरफ़ से शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए अति गंभीरतापूर्ण योजनाओं पर सोचना व अमल करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ताकि प्रत्येक शिक्षक अपने स्तर पर ही शोध आदि के लिए भी पहल कर सके। हमें इस तरह का ढाँचा विकसित करना होगा ताकि कक्षा में शिक्षक जो कुछ पढ़ाता है वह शैक्षणिक ज्ञान का सामान्य हिस्सा हो सके (रॉबर्ट्स 1995)।

8.2 कक्षा में शिक्षक की भूमिका

भाषा पढ़ाने वाले शिक्षक की भूमिका की महत्ता की गंभीरता इसी बात से ज़ाहिर हो जाती है कि एक तो भाषा पूरी पाठ्यचर्या में विद्यमान होती है और दूसरे, भाषाज्ञान, सामाजिक संबंधों को कई स्तरों पर मजबूत करता है जिसका विशेष महत्त्व है। हम अपने अंतिम विश्लेषण से यह जानते हैं कि शिक्षक के पास तयशुदा आदेश-प्रपत्र होता है और वह महज़ प्रतिनिधित्व प्रदान करने वाला अधिकारी है जो अपने को अंतर्विरोधों में डाले बिना अपनी भूमिका पर पुनर्विचार नहीं कर सकता (देखें बोर्डियू 1993) तथापि, हम इस बात से सहमत और सुविज्ञ हैं कि सामाजिक परिवर्तनों की प्रक्रिया एक स्तर पर कक्षा में ही शुरू होनी चाहिए (अग्निहोत्री 1995)।

8.3 शिक्षकों का प्रशिक्षण

हमारे देश में शिक्षक-प्रशिक्षण का कार्यक्रम लगभग निराशाजनक स्थिति में है। बी.एड. के पुराने हो चुके एक साल के प्रोग्राम आज के दौर में कक्षाओं में मिलने वाली जटिल चुनौतियों का सामना करने के लिए शिक्षकों को तैयार नहीं कर पाते। इनके विकल्पों जैसे 'शिक्षाकर्मी' ने तो इस पेशे को और नीचे गिरा दिया। यदि आदिवासी-शिक्षा की बात करें तो हम परिस्थिति को और ज़्यादा खराब पाते हैं। भारत की कुल जनसंख्या का 8 प्रतिशत आदिवासी हैं (देखें 1991 की भारत की जनगणना का विवरण (www.censusindia.net/scst.html)। प्रतिशत के हिसाब से ये कम प्रकट होते हैं लेकिन वास्तव में, तुलना की जाए तो यह आस्ट्रेलिया की जनसंख्या से ज़्यादा है (1991 की भारतीय जनगणना में भारत की आदिवासी जनसंख्या 67,758,380 थी और उसी साल कि आस्ट्रेलिया की जनगणना में आस्ट्रेलिया की जनसंख्या 17,288,044 थी)। उड़ीसा जैसे राज्य की कुल जनसंख्या का 24 प्रतिशत आदिवासी ही हैं। उड़ीसा में कुल 62 आदिवासी समूह हैं लेकिन आज केवल 22 भाषाएँ ही बची रह गई हैं,जो कि विलुप्ति के कगार पर खड़ी हैं। बाकी भाषाएँ मुख्यधारा में समाहित हो गईं (उड़ीसा के संबंध में विवरण के लिए देखें– www.languageinindia.com2005/smitasinhaorisa1.html)।

> भाषा शिक्षक की भूमिका इस हद तक हो कि भाषा पाठ्यचर्या की सीमाओं में बँधी न रहकर स्वछंद हो और जटिल तरीकों से भाषा का प्रयोग विविध प्रकार से सामाजिक संबंधों को और मजबूत बनाए, वस्तुतः यह बहुत महत्त्वपूर्ण है।

सामान्यतः आदिवासी इलाकों के स्कूलों के शिक्षक विद्यार्थियों या उनके अभिभावकों की भाषाओं से अनजान होते हैं। इतना ही नहीं, उड़ीसा में तो विद्यार्थियों पर प्रतिबंध है कि वे अपने घर की भाषा का स्कूली समय सुबह 10 बजे से 4:30 शाम तक के लिए प्रयोग न करें। कुछ ऐसी ही स्थिति उत्तर- पूर्व और दिल्ली में भी है।

कई अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि आदिवासी स्कूलों में 5वीं में भी विद्यार्थी पाठ्यपुस्तक के किसी भी वाक्य को पढ़ने में असमर्थ होते हैं। अक्षरों की पहचान और शब्द निर्माण में उन्हें कठिनाई होती है। शिक्षकों के लिए विद्यार्थियों की भाषा को जानना महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता है ऐसे में विशेष तरीके विकसित करने की ज़रूरत है, जो घर, पड़ोस व स्कूल की भाषा के बीच पुल का काम कर सकें। अधिकांशतः कक्षाओं में शिक्षक और विद्यार्थियों के बीच का संवाद एक ही दिशा (वन वे) में होता है जिसमें शिक्षक बोलता है, विद्यार्थी सुनते हैं,

विद्यार्थी समझ रहे हैं कि नहीं इससे कोई मतलब नहीं होता। बहुभाषिकता और संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देने के लिए जिसकी वकालत हम इस आधार पत्र के माध्यम से कर रहे हैं इसमें यह अनिवार्य करना होगा कि शिक्षक विद्यार्थियों की भाषा से अवगत हों।

कोई उम्मीद कर सकता है कि शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम एक शोध-अध्ययन के अभिकल्पन में कुछ मूल तथ्यों पर बल देगा जो नमूने, सामग्री, आँकड़ों के आधार पर निष्कर्ष, विश्लेषण और मात्रात्मक व गुणात्मक आँकड़ों के 'ट्रायंग्लूयेशन' पर ध्यान देगा। कक्षाओं के मामले में बच्चों की केस स्टडी पर विशेष ज़ोर की ज़रूरत है। इस तरह का प्रशिक्षण सभी विषयों पर लागू होगा।

8.4 गहन नवाचारी प्रशिक्षण की ज़रूरत

हमारी कक्षाओं में आज भी शिक्षक और पाठ्यपुस्तक केंद्रित भाषा-शिक्षण पद्धति विद्यमान है जिसमें शिक्षक को ज्ञान का सर्वोपरि अधिकारी माना जाता है और जहाँ सीखना मुख्यत: बने बनाए पैटर्न का अभ्यास, करने और रटने के माध्यम से होता है। हम उम्मीद करते हैं कि नए शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षकों को भाषा की प्रकृति, संरचना व उसके प्रकार्य के प्रति, भाषा-सीखने व परिवर्तन की प्रक्रिया के प्रति जागरूक करेंगे और उन्हें ऐसे तरीके खोजने की दिशा में बढ़ने को प्रेरित करेंगे जो बहुभाषी-कक्षा के लिए उचित हों। कई संस्थाओं और व्यक्तियों के साथ-साथ एस.टी.ए.एम.पी. (साइंटिफिक थ्योरी एंड मेथड प्रोजेक्ट इन द यू.एस.) खास कर होंडा और ओ' नील (1993), स्प्रोट (1984), राष्ट्रीय भाषा परियोजना (1992), अग्निहोत्री (1992, 95) के अध्ययनों ने दिखलाया है कि कैसे शिक्षक एक साथ बहुभाषी कक्षा में शोधार्थी व बच्चे में भाषिक संज्ञानात्मक विकास में सहायक की भूमिका निभा सकता है।

> नये अध्यापक-प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षकों को भाषा की प्रकृति, सरंचना और प्रकार्यों, भाषिक संप्राप्ति तथा भाषिक परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील बनाएँगे तथा उन्हें ऐसी कार्यनीतियों से परिपूर्ण करेंगे जिससे वे बहुभाषी कक्षा में स्थिति के अनुरूप संसाधन विकसित कर सकें। बच्चों और उनके अभिभावकों की वास्तविक आवाज़ शिक्षकों की एजेंसी के माध्यम से सुनी जाएगी। यदि हम अपने शिक्षकों को सभी भाषिक स्तरों जैसे ध्वनि, शब्द, वाक्य, प्रोक्ति आदि के प्रति संवेदनशील और प्रेक्षक बनने के लिए प्रशिक्षित कर सकते हैं तो इसमें कोई संदेह नहीं कि हमे अधिकाधिक प्रभावशाली और चुनौतीपूर्ण पाठ्यपुस्तकें और शिक्षक-सहायक सामग्री तैयार करने में सक्षम होना चाहिए।

8.5 शिक्षक, शोधार्थी के रूप में

पाठ्यपुस्तक व पाठ्यचर्या निर्माण में शिक्षकों के शोध की महत्ता को गंभीरता से लेने की ज़रूरत है। बच्चों और उनके माता-पिता/अभिभावक के विचारों के बारे में शिक्षकों के माध्यम से ही बेहतर रूप में जानकारी मिल सकती है। यदि हम अपने शिक्षकों को सभी भाषिक स्तरों जैसे- ध्वनि, शब्द, वाक्य, विमर्श आदि के प्रति संवेदनशील अवलोकन करने के लिए प्रेरित करें, तो निस्संदेह हम उनके माध्यम से प्राप्त जानकारी के बल पर ज़्यादा प्रभावशाली पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक व अन्य पाठ्यसामग्री तथा सहायक शिक्षण सामग्री विकसित कर पाने में सफल हो सकते हैं।

इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि शिक्षक, वह भी भारत जैसे देश में काफ़ी सुविधावंचित माहौल में काम करते हैं। अपने सामान्य शिक्षण कार्य के अलावा उन पर दूसरे कार्य भी लाद दिए जाते हैं जिसके लिए उन्हें कोई अतिरिक्त भुगतान नहीं किया जाता। उन्हें कई बार कक्षा छोड़कर ऐसा भी करने को मजबूर किया जाता है मसलन चुनाव में, साक्षरता अभियान में, परिवार नियोजन, जनगणना आदि में।

स्कूलों की स्थिति भी कई जगह ऐसी दयनीय है कि निम्नतम स्तर पर ठीक से पढ़ा पाना संभव नहीं होता तथापि, केवल शिक्षक ही है जो बच्चों को बोलने में स्वर के उतार-चढ़ाव, तीव्रता तथा धीमेपन के प्रति जागरूक कर सकता है। एकमात्र वही है जो बच्चों को पद्य की

लय और गद्य की समझ के प्रति सचेतन कर सकता है। इसलिए उसे इस तरह प्रशिक्षित किया जाना चाहिए ताकि वह स्कूल में प्रवेश कर रहे बच्चे में मौजूद विशाल भाषिक व संज्ञानात्मक क्षमता के प्रति सचेत हो सके। भाषा के मामले में यह सच है कि प्रत्येक बच्चा अपनी भाषा को ठीक से बोल लेता है। एक सचेत शिक्षक को यह ज्ञान होना चाहिए कि कैसे बच्चे की अपनी भाषा व स्कूल में प्रयुक्त होने वाली भाषा के बीच पुल बनाया जाए। उसे मालूम होना चाहिए कि 'मानक' की श्रेणी प्राप्त भाषा, ईश्वर की भाषा नहीं है या शून्य में नहीं जन्मी है, बल्कि वह सामाजिक शक्तियों द्वारा सृजित है। किसी खास समय में, खास सामाजिक संरचना में कोई भी भाषा 'मानक भाषा' का दर्जा पाने की क्षमता रखती है। एक प्रशिक्षित शिक्षक ही भाषा सीखने की प्रक्रिया में बच्चे द्वारा की जा रही गलतियों को उसके स्तर के हिसाब से देख पाने के काबिल हो सकेगा।

9. आकलन

9.1 भूमिका

आकलन पठन-पाठन प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा है। वर्तमान अंतिम परीक्षाभिमुखी प्रक्रिया उच्च स्तरीय तनावों को जन्म देती है। हाल के वर्षों में Xवीं या XIIवीं के परीक्षा-परिणामों के उपरांत या परीक्षा के पहले ही विद्यार्थियों द्वारा आत्महत्या के प्रयास के मामलों में तेज़ी से वृद्धि होती पाई गई है। कई अध्ययनों (हारविट्ज, हारविट्ज और कोप 1986; स्टेनबर्ग और हारविट्ज 1986, अब्दुल हमीद 2005) से भी यह बात खुलकर सामने आई है कि परीक्षाओं के भय से उत्पन्न तनाव, उनके प्रदर्शन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इसलिए आकलन विधियों को ऊबाऊ व भय पैदा करने के स्थान पर ज़्यादा से ज़्यादा चुनौतीपूर्ण व मजेदार बनाने के लिए जल्द ही पहलकदमी की ज़रूरत है। बोलचाल से लेकर अन्य कई भाषिक कौशलों (पढ़ना, लिखना, बोलना, सुनना) पर अनेक अध्ययन व शोध आदि (उदाहरण के लिए देखें, एल्डरसन 1979; बैचमैन 1989; डेविस 1990; ओलर 1983; वैलेट 1967; हैरिस 1969; स्पोल्स्की 1978, हैरिसन 1980, किंश (1974-88) हुए हैं और हम उनका लाभ उठा सकते हैं।

जैसा कि ये अध्ययन बताते हैं, मूल्यांकन एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है और इसका उद्देश्य है-सीखने वाले की भाषा की संरचना और एकरूपता की समझ का आकलन, इसे विभिन्न संदर्भों में उपयोग करने की क्षमता और इसके सौंदर्यपरक पहलू को परख सकने की क्षमता का भी आकलन। इससे हमें सीखने वाले की वास्तविक स्थिति का पता चलता है और उसकी स्थिति/स्तर को बेहतर बनाने के लिए समय पर उचित हस्तक्षेप करने के लिए आवश्यक पहल करने का भी इशारा मिलता है।

सीखने वाले का मूल्यांकन भाषिक ज्ञान और संप्रेषणात्मक कौशलों दोनों के स्तरों पर होना चाहिए। सीखने वाले का मूल्यांकन खुद उसके संदर्भ में और उसके साथियों के साथ रखकर किया जाना चाहिए जिसके लिए कई तरह की जाँच की जा सकती है। खुले या बंद प्रश्न, बहुवैकल्पिक क़िस्म के प्रश्न या यूँ ही मनचाहे सबक। समूह कार्य और प्रोजेक्ट आदि के आधार पर भी विद्यार्थी की प्रगति मूल्यांकन के नये तरीके शुरू किए जा सकते हैं।

9.2 परीक्षणों के प्रकार

परीक्षणों का अर्थ है- ज्ञान, क्षमता व प्रदर्शन का किसी भी विधि से मापन। भाषा-शिक्षण के मामले में जाँच को कक्षा-कार्य के ही विस्तार के रूप में देखा जाना चाहिए, जो सीखने वाले व सिखाने वाले दोनों के लिए उपयोगी सूचनाएँ प्रदान करने में सहायक हों और जिनका उपयोग पढ़ाने के तरीके और सामग्री को विकसित करने हेतु किया जा सके।

- **अ) अभिरुचि परीक्षणः** विद्यार्थी में द्वितीय/विदेशी भाषा सीखने की क्षमता है या नहीं अथवा इस प्रकार की कोई संभावना है या नहीं - इसकी जाँच इस परीक्षण के द्वारा की जाती है। इससे वे विद्यार्थी चुनकर सामने लाए जा सकते हैं जो उक्त भाषा सीखने के काबिल हों।
- **ब) कसौटी-संदर्भित परीक्षणः** इस परीक्षण का उद्देश्य निश्चित होता है। अर्थात् खास विषय-वस्तु से

संबंधित होता है। निदानात्मक और उपलब्धिपरक जाँच इस श्रेणी में आते हैं। निदानात्मक जाँच से पता चलता है कि पाठ्यक्रम के किसी विशिष्ट पहलू के ज्ञान में विद्यार्थी की क्या स्थिति है? उसने कितना सीखा है? यह कोर्स की किसी इकाई की समाप्ति के उपरांत लिया जाता है। उपलब्धिपरक जाँच में विद्यार्थी की अन्य विद्यार्थियों की तुलना में जो स्थिति होती है उसकी जाँच की जाती है। इस जाँच का उद्देश्य यह जानना होता है कि जो लक्ष्य घोषित किए गए थे, उन्हें कहाँ तक प्राप्त किया जा सका।

स) **मानक संदर्भित परीक्षण:** यह परीक्षण ग्लोबल भाषा योग्यता की जाँच है। अधिकांश रोज़गार और दक्षता संबंधी जाँच इसी तरह की होती हैं। इसका उद्देश्य है- विद्यार्थी ने जो कुछ सीखा उसे वह कहाँ तक वास्तविक स्थिति में कार्यान्वित करने के काबिल है और क्या वह विशिष्ट योग्यताओं के संदर्भ में एक मानक स्तर तक पहुँच सका।

ये परीक्षण वस्तुनिष्ठ या वर्णनात्मक हो सकते हैं। वस्तुनिष्ठ परीक्षण में अंकन यांत्रिक ढंग से किया जा सकता है। उनमें बहु-वैकल्पिक, रूपांतरण पर आधारित, अधूरे वाक्यों को पूरा करने, सही/गलत, जोड़े मिलाने आदि जैसे प्रश्न आते हैं। वर्णनात्मक परीक्षण के मामले में परीक्षक के निजी फ़ैसले का महत्त्व होता है और अंकन ज़्यादा कठिन व समय लेने वाला होता है। यदि परीक्षार्थियों की संख्या ज़्यादा हो तो इस तरह की जाँच संभव नहीं है।

9.3 परीक्षण तैयार करना

कोई भी परीक्षण तैयार करने की प्रक्रिया, यहाँ तक कि कक्षा के भीतर की भी, मुख्यत: तीन चरणों में संपादित होती है: 1. अभिकल्प, 2. संचालन, और 3. परीक्षण का प्रशासन।

अभिकल्प तैयार करने की अवस्था में प्रश्नों का विवरण, पहचान और चुनाव शामिल होता है।

संचालन (ऑपरेशन) की अवस्था में परीक्षण में प्रयुक्त किए जाने वाले विविध कार्यों के विशेष विवरण तैयार किए जाते हैं, साथ ही एक ख़ाका भी तैयार किया जाता है जो कि यह बताता है कि वास्तविक परीक्षण का रूप देने के लिए जाँच कैसे की जाएगी।

> मूल्यांकन एक सतत प्रक्रिया है... इसका प्राथमिक उद्देश्य प्रविधि, सामग्री, शिक्षक, प्रशिक्षण और कक्षा में कार्य निष्पादन में सुधार के लिए प्रतिपुष्टि प्राप्त करना है...

इसमें वास्तविक परीक्षा संबधी कार्य, लिखित अनुदेश, और अंकन की क्रियाविधियाँ भी शामिल होती हैं। कार्यान्वयन की अवस्था में परीक्षण लिया जाता है, सूचनाएँ एकत्र की जाती हैं तथा अंकों का विश्लेषण किया जाता है।

परीक्षण का विकास शिक्षक को परीक्षण की उपयोगिता को गौर से देखने/पड़ताल करने का अवसर प्रदान करता है। विकास की यह प्रक्रिया अनुक्रियात्मक होनी चाहिए। यह बाद में जाँच-प्रश्नों के पुनर्विचार और उन्हें दोहराने में सहायक सिद्ध होती है। साथ ही अंकन की पद्धति को भी निर्मित व विकसित करने में यह मददगार साबित होती है।

9.4 परीक्षण के लिए दिए जाने वाले कार्य

परीक्षण कार्य कई तरह के हो सकते हैं – अनुत्पादक परीक्षण कार्य (क्लोज परीक्षण करना, श्रुतलेखन, अनुवाद, नोट लेना, संयोजन, आदि); उत्पादन परीक्षण कार्य (जोड़ा मिलाना, बहुवैकल्पिक, क्रमबद्ध करना आदि) से लेकर पोर्टफोलिओ-आकलन (एक खास अवधि में विद्यार्थी द्वारा किए गए सृजनात्मक कार्य) तक। भाषा का पोर्टफोलियो प्रपत्रों का संगठित व क्रमबद्ध संग्रह हो सकता है जिसे विद्यार्थी ने खास समय के दरम्यान में किया हो, और उसे व्यवस्थित ढंग से प्रदर्शित किया जा सकता है। इसे मानक परीक्षण-पद्धतियों के विकल्प के रूप में देखा जाता है। इससे विद्यार्थी में सीखने के प्रति दायित्वबोध पनपता है।

भाषिक मूल्यांकन के आधुनिक तरीके यह सुझाते

हैं कि विविक्त बिंदुओं और समाकलनात्मक परीक्षणों का संतुलित समूह बनाना उपयोगी हो सकता है। समाकलनात्मक परीक्षण जैसी बंद प्रक्रिया (क्लोज़्ड प्रोसिड्योर) जो गेस्टाल्ट (समग्राकृति)मनोविज्ञान पर आधारित हो, सभी स्तरों पर विविध रूपों में सृजनात्मक ढंग से ढाला जा सकता है। (कोहेन 1980)। इसी प्रकार से, विशेषकर बहुभाषी कक्षा में, अनुवाद को विभिन्न प्रकार से प्रयुक्त किया जा सकता है।

10 सिफ़ारिशें

किए गए तमाम संवादों व बहसों के उपरांत निष्कर्षत: हम निम्नलिखित सिफ़ारिशें प्रस्तुत कर रहे हैं :

1. प्राथमिक-स्तर की शिक्षा मुख्यत: भाषा-शिक्षा है। आरंभिक स्तर के गणित, समाज एवं परिवेश का ज्ञान भी मातृभाषा के माध्यम से सबसे अच्छे ढंग से व आसानी से प्राप्त किया जाता है। प्राथमिक स्कूल में शिक्षण का माध्यम सीखने वाले की भाषा मातृभाषा ही होनी चाहिए, जिसका आधार निश्चय ही वे आनुभविक, भाषिक व संज्ञानात्मक स्रोत होने चाहिए जिन्हें बच्चा अपने साथ लेकर स्कूल में प्रवेश करता है। बाद की स्कूली-शिक्षा में शिक्षण का माध्यम मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा होना चाहिए। लेकिन केंद्रीय व नवोदय विद्यालयों में, जहाँ हिंदी और अंग्रेज़ी का प्रयोग पहली कक्षा से ही होने लगता है, वहाँ इन्हें बरकरार रखा जा सकता है। इन विद्यालयों से बाहर आने वाले विद्यार्थियों के लिए प्रत्येक राज्य में कम-से-कम एक द्विभाषीय (हिंदी-अंग्रेज़ी) कॉलेज ज़रूर होना चाहिए।
2. जहाँ योग्यता प्राप्त शिक्षक और पर्याप्त अवसंरचनात्मक (इंफ्रास्ट्रक्चरल) सुविधाएँ उपलब्ध हों वहाँ प्राथमिक स्तर से ही अंग्रेज़ी पढ़ाई जा सकती है, लेकिन प्रथम एक-दो साल तक फोकस मुख्यत: मौखिक, श्रव्य कुशलता, सामान्य कोशगतमदों या दैनंदिन बातचीत पर ही होना चाहिए। अंग्रेज़ी की कक्षा में बच्चों को उनकी अपनी भाषा का प्रयोग करने से नहीं रोकना चाहिए और शिक्षण ऐसी पाठ्यपुस्तक पर निर्भर होना चाहिए जो बच्चे के समझ के स्तर का हो। यदि योग्य-प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध नहीं है तो अंग्रेज़ी प्राथमिक स्तर के बाद ही लाई जानी चाहिए, और उसे इस तरह से पढ़ाया जाए कि शिक्षार्थी उन बच्चों के स्तर तक जल्दी से जल्दी पहुँच सके, जिन्होंने अंग्रेज़ी की पढ़ाई प्राथमिक स्तर से ही शुरू कर दी थी।
3. घर में बोली जाने वाली, दोस्तों के बीच व पड़ोस की भाषाओं तथा स्कूल में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा के बीच के फ़ासले को पाटने का भरपूर प्रयास किया जाना चाहिए। अंग्रेज़ी माध्यम स्कूलों में भी मातृभाषा का एक माध्यम के रूप में प्रयोग होना चाहिए और शिक्षार्थी को एक माध्यम से दूसरे माध्यम में जाने की छूट होनी चाहिए।
4. मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग शिक्षा के सभी उच्च स्तरों तक जारी रहना चाहिए क्योंकि मातृभाषा या आसपास की भाषा में उच्च-दक्षता का स्तर बेहतर संज्ञानात्मक विकास अंतर्वैयक्तिक संवाद-कुशलता व सैद्धांतिक-स्पष्टता को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
5. पूरी स्कूली शिक्षा के दौरान द्विभाषिकता को बनाए रखना चाहिए, कारण द्विभाषिकता और विद्वत् (स्कॉलास्टिक) उपलब्धियों का गहरा सकारात्मक संबंध पाया गया है । भाषा(ओं) में उच्च-स्तरीय दक्षता प्राप्ति के बिना गणित, समाज विज्ञान और विज्ञान में समझ और उपलब्धि के स्तर का विकास संभव नहीं है।
6. पाठ्यचर्या-निर्माताओं, पाठ्यपुस्तक-लेखकों और शिक्षक को विभिन्न भाषाओं और विषयों के बीच संपर्क-सूत्र (नेटवर्क) स्थापित करने का भरपूर प्रयास करना चाहिए। पाठ्यचर्या के पूरे पटल में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं पर ध्यान केंद्रित करना ज़रूरी है, क्योंकि भाषा-दक्षता में उच्च स्तर की कुशलता एक भाषा से दूसरी भाषा में आसानी से

स्थानांतरित हो जाती है। विभिन्न विषयों में भाषा-दक्षता के स्तर और विषय के रूप में प्रयुक्त भाषा के स्तर के बीच संगति होनी चाहिए।

7. छठी-कक्षा से संस्कृत बतौर आधुनिक भारतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जानी शुरू कर दी जानी चाहिए, लेकिन शास्त्रीय भाषाओं के मामले में (संस्कृत, तमिल या लैटिन) यह भाषा माध्यमिक या उच्च माध्यमिक स्तर पर कम से कम दो वर्षों तक, रोचक व चुनौतीपूर्ण तरीके से पढ़ायी जानी चाहिए।

8. जहाँ तक संभव हो सके विदेशी भाषा उच्च माध्यमिक स्तर पर दो वर्षों तक पढ़ाई जानी चाहिए।

9. विधियाँ, सामग्री, कक्षा में अपनाई गई कार्यनीतियाँ और मूल्यांकन प्रक्रिया इस तरह की होनी चाहिए जो इस बात को सुनिश्चित करें कि बच्चे स्कूल छोड़ते वक्त हिंदी/क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेज़ी में उच्च-दक्षता प्राप्त कर चुके हों।

10. हिंदी और अंगेज़ी के शिक्षकों को क्षेत्रीय भाषा का ज्ञान होना ज़रूरी है, ताकि शिक्षार्थी की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित की जा सके। आदिवासी क्षेत्रों में जहाँ दूसरी भाषा के ज्ञान की संभावना कम हो, वहाँ उस क्षेत्र की भाषा जानने वाले शिक्षकों को शामिल करना अत्यंत ज़रूरी है।

11. रोचक व चुनौतीपूर्ण पाठ्यपुस्तकें और अन्य पुस्तकें जो शैली, विषय व अभिव्यक्ति के व्यापक क्षेत्र को समेटे हों, का निर्माण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, साथ ही ऐसे शिक्षकों को मुहैया करवाना चाहिए जो विभिन्न भाषाओं में उच्च दक्षता प्राप्त हों।

12. भाषा-शिक्षण के मामले में संपूर्णतावादी (होलिस्टिक) रुख अपनाने की ज़रूरत है। विविध संदर्भों में भाषा प्रयोग पर आधारित पाठ्यपुस्तकों को शिक्षण का आधार बनाना चाहिए।

13. शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने के लिए ज़रूरी है कि ऐसे संस्थान खोले जाएँ जहाँ भाषा-शिक्षण के लिए कुशल प्रशिक्षक तैयार किए जा सकें। साथ ही उन गैर सरकारी संस्थाओं से संपर्क ज़रूरी है जिन्होंने भाषा-शिक्षण की दिशा में अभिनव प्रयोग किए हों।

14. राज्य के भीतर और राज्यों के बीच शिक्षा में भाषा के विकेंद्रीकरण हेतु शीघ्र ही कदम उठाने की ज़रूरत है। इसकी शुरुआत मूल आत्मा से छेड़-छाड़ किए बिना त्रिभाषा-सूत्र को कार्यान्वित करने के मामले में लचीलापन बरतते हुए की जा सकती है।

15. बहुभाषी कक्षाएँ जो कि भारत में सामान्यतः बहुतायत में होती है, उन्हें शिक्षा में अवरोध के बजाय, संसाधन के तौर पर ही देखा जाना चाहिए। शिक्षकों को कक्षाओं को महज पढ़ाने की जगह नहीं बल्कि सीखने की जगह के रूप में भी लेना चाहिए। बहुभाषी व बहुभाषी-सांस्कृतिक कक्षाएँ भाषिक व सांस्कृतिक विविधता के प्रति सकारात्मक प्रवृति उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

16. अल्पसंख्यकों और आदिवासियों की भाषाओं को बचाने, बनाए रखने व विकसित करने का भरपूर प्रयास ज़रूरी है जो तेज़ी से हो रहे सामाजिक परिवर्तनों व भूमंडलीकरण की वजह से नष्ट होने के कगार पर हैं और नष्ट होने की दिशा में उन्मुख हो रही हैं।

17. धार्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक पूर्वाग्रहों को समाप्त करने की जिम्मेदारी पूरे शिक्षा-तंत्र की है, लेकिन भाषा कक्षाएँ इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं, इसलिए विमर्शों को जिम्मेदाराना तौर पर लेने की दिशा में सामग्री-निर्माताओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

18. हमारे ज्ञान का अधिकांश हिस्सा जेंडर के प्रति पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है और इसे संचरित व पुनर्निर्मित करने का काम भाषा ही करती है। यदि हम

चाहते हैं कि वास्तविक जनतंत्र का स्वप्न पूरा हो सके तो लैंगिक पूर्वाग्रहों को समाप्त करने का भरपूर प्रयास करना होगा।

19. मूल्यांकन की प्रक्रिया न स्वभाव में साविधिक होनी चाहिए और न ही उसमें महज़ व्याकरण व स्थानीय पठन बोध पर बल हो। यह एक सतत प्रक्रिया होनी चाहिए और इसमें सभी उपरोक्त सिफ़ारिशें दिखाई देनी चाहिए, जिसमें शामिल हों भाषिक विविधता के वे पहलू जो विभिन्न अभिव्यक्तियों और शैलियों में पाए जाते हैं। साथ ही वे संप्रेषणात्मक कार्य जो पूरी पाठ्यचर्या में निहित होते हैं।

20. कई शिक्षार्थियों के सीखने का स्तर सामान्य से अलग हो सकता है (शारीरिक या मानसिक कारणों की वजह से)। वे सामान्य सामाजिक अंत:क्रिया के माध्यम से मूलभूत भाषा-कौशल प्राप्त कर सकते हैं, उन्हें कंप्यूटर सीखने में भी थोड़ी कठिनाई हो सकती है। इसलिए उच्च-दक्षता प्राप्त करने के लिए आधुनिक तकनीक व विशिष्ट रूप से अभिकल्पित सामग्री तक उनकी विशेष पहुँच सुनिश्चित कराई जानी चाहिए।

21. हम ज़ोर डालकर कहना चाहते हैं कि एन.सी.ई.आर.टी. और इसी तरह की अन्य संस्थाएँ, मसलन सी.आई.आई.एल., मैसूर को एक साथ मिलकर भारतीय भाषाओं के शिक्षण का 'ऑनलाइन प्रोग्राम' शुरू करना चाहिए। साथ ही उपयोगी व रोचक दूरदर्शन कार्यक्रम बनाए जा सकते हैं जो भाषा-सीखने व परा-भाषिक चेतना को उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हों।

22. चूँकि पूरी पाठ्यचर्या में भाषा की भूमिका की महत्ता की पहचान अब होने लगी है इसलिए सभी शिक्षकों के लिए विशेष अभिनवीकरण कोर्स (ओरिएंटेशन कोर्स) अनिवार्य कर देना चाहिए, जो भाषा की प्रकृति, संरचना व प्रकार्य पर केंद्रित हो, साथ ही जो शिक्षकों में शिक्षार्थी व भाषा दोनों के विकास के प्रति दायित्वबोध उत्पन्न करे।

23. पढ़ने की आदत को प्रोत्साहित करने के लिए यह ज़रूरी है कि प्रत्येक स्कूल में अच्छे पुस्तकालय हों, जहाँ बच्चों के अपने पाठ्यक्रम के अलावा अन्य सामग्री पढ़ने व लिखने के प्रति भी प्रेरित किया जा सके।

24. अंग्रेज़ी भाषा पढ़ाने के मामले में यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण होगा कि संदर्भ पाश्चात्य (अपरिचित) (विदेशी) न हो, बल्कि स्थानीय परिप्रेक्ष्य-समृद्ध हों।

25. भाषा-सीखने व सिखाने के तरीकों के क्षेत्र में छोटी-छोटी शोध परियोजनाओं को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

26. भाषा की पाठ्यपुस्तकों और विज्ञान/समाज विज्ञान में प्रयुक्त भाषा के बीच के फ़ासले को पाटना या उनके बीच संबंध स्थापित करना अत्यंत ज़रूरी है। कई शिक्षार्थी वैज्ञानिक व सामाजिक विज्ञान की धारणाओं को भाषायी समस्या की वजह से ही नहीं समझ पाते हैं।

परिशिष्ट I

ग्रंथ सूची

अब्दुल हमीद, एन. 2005, *सिरियन स्टूडेंट्स प्रॉफिसियंसी इन इंग्लिश : ए सोशल साइकोलॉजिकल पर्सपेक्टिव,* अप्रकाशित, पीएच. डी. का शोधप्रबंध, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

अग्निहोत्री, आर. के. 1979, *प्रोसेस ऑफ़ एसिमिलेशन: ए सोशियो-लिग्विस्टिक स्टडी ऑफ़ सिख चिल्ड्रेन इन लीड्स,* अप्रकाशित, डी. फिल का शोधप्रंबध, न्यूयार्क विश्वविद्यालय।

अग्निहोत्री, आर. के. 1988, 'एरर्स एज लर्निंग स्ट्रेटजीज़', *इंडियन जर्नल ऑफ़ अप्लॉयड लिंग्विस्टिक्स* 14.1:1-14

अग्निहोत्री, आर. के. 1992, 'इंडिया : मल्टीलिंगुएल पर्सपेक्टिव', नाईजेल, टी. द्वारा संपादित, *डेमोक्रेटिकली स्पीकिंग: इंटरनेशनल पर्सपेक्टिव ऑन लैंग्वेज प्लानिंग,* दक्षिण अफ्रीका, सॉल्ट रिवर : राष्ट्रीय भाषा परियोजना।

अग्निहोत्री, आर. के. 1995, 'टीचर्स' पेस इन द क्लासरूम', दी *लैंग्वेज कॅरिकुलम : डायनामिक्स ऑफ़ चेंज* (खंड:1)– इंटरनेशनल सेमिनार का रिपोर्ट, हैदराबाद: सी आई. ई. एफ. एल.।

अग्निहोत्री, आर. के., खन्ना, ए.एल. 1994 (संपादकगण), *सेकंड लैंग्वेज एक्वीजिशन: सोशियो-कल्चरल एंड लिंग्विस्टिक आस्पेक्ट्स ऑफ़ इंग्लिश इन इंडिया* (आर.ए.एल.1), नयी दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस।

अग्निहोत्री, आर. के. खन्ना, ए. एल. 1995 (संपादकगण), *इंग्लिश लैंग्वेज टीचिंग इन इंडिया : इश्यूज़ एंड इन्नोवेशंस* (आर. ए. एल.2), नयी दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस।

अग्निहोत्री, आर. के. और खन्ना, ए. एल. 1997, "सोशल साइकोलॉजिकल पर्सपेक्टिव ऑन सेकंड लैंग्वेज लर्निंग: ए क्रिटिक" सिंह, आर. (संपादक) के *ग्रामर, लैंग्वेज एंड सोसायटी,* नयी दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस।

अग्निहोत्री, आर. के., खन्ना, ए. एल. और मुखर्जी ए. 1982, "प्रेडिक्टर्स ऑफ़ एचिवमेंट इन इंग्लिश टेंसेस : ए सोशियो- साइकोलॉजिकल स्टडी", *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एप्लॉयड लिंग्विस्टिक्स* 8.2: 89-105

अग्निहोत्री, आर. के., खन्ना, ए.एल. और मुखर्जी, ए. 1983, *वैरिएशंस इन द यूज ऑफ़ टेंसेस इन इंग्लिश : ए सोशियोलिंग्विस्टिक पर्सपेक्टिव,* नयी दिल्ली: आई.सी.एस.एस.आर.

अग्निहोत्री, आर. के., खन्ना, ए. एल. और एस.शुक्ला 1964, *प्रशिका,* नयी दिल्ली: रत्ना सागर।

अग्निहोत्री., आर. के., खन्ना, ए. एल. और सचदेव, आई. (संपादकगण), *सोशल साइकोलॉजिकल पर्सपेक्टिव्स इन सेकंड लैंग्वेज लर्निंग* (आर.ए.एल.4), नयी दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस।

अग्निहोत्री, आर. के. और संजय कुमार 2001, (संपादकगण), *भाषा, बोली और समाज: एक अंत:संवाद,* नयी दिल्ली: देशकाल।

अग्रवाल, पी. और संजय कुमार 2000 (संपादकगण), *हिंदी नयी चाल में ढली,* नयी दिल्ली: देशकाल।

एल्डरसन, जे.सी. 1979, द *क्लोज़ प्रोसिड्योर एंड प्रोफिसियेंसी इन इंग्लिश एज ए फॉरेन लैंग्वेज.,* टी.ई.एस.ओ.एल. *त्रैमासिक* 13, 2:219-28

एल्डरसन, जे.सी. और बरैटा, ए (संपादकगण) 1992, *इवेल्यूएटिंग सेकंड लैंग्वेज एजुकेशन,* कैंब्रिज : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

एल्डरसन, जे. सी., काफॉम, सी. और वॉल, डी. 1995, *लैंग्वेज टेस्ट कंस्ट्रक्शन एंड इवैल्यूएशन,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

ऑलराइट, डी. और बेली, के. एम. 1991, *फोकस ऑन द लैंग्वेज क्लासरूम,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

ऑलराइट, आर. एल. 1981, '*व्हाट डू वी वांट टीचिंग मैटेरियल्स फॉर?* ई. एल. टी. 36.1: 5-18

एन्डरसन, आर. डब्ल्यू. (संपादित), 1981, *न्यू डाइमेंशंस इन सेकंड लैंग्वेज एक्वीजीशन रिसर्च,* रॉली, मास: न्यूबरी हाउस।

एंथोनी, ई. एम. 1972, 'एप्रोच, मेथड एंड टेक्नीक' एलेन और कैंपबैल द्वारा संपादित, 1972 के *टीचिंग इंग्लिश एज ए सेकंड लैंग्वेज,* टाटा मैकग्रॉ हिल।

अरोड़ा, जी. एल. 1995, *चाइल्ड-सेंटर्ड एजुकेशन फॉर लर्निंग विदाउट बर्डेन,* गुड़गाँव : कृष्णा पब्लिशिंग कंपनी।

एटकिंश्सन, एम. 1982, *एक्सप्लेनेशंस इन द स्टडी ऑफ़ चाइल्ड लैंग्वेज डेवलपमेंट,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

एरोरिन, वी. 1977, 'ऑन द सब्जेक्ट मैटर ऑफ़ सोशल-लिंग्विस्टिक्स', गेरासीमोरा, एल. (संपादक), *थ्योरीटिकल ऑस्पेक्ट्स ऑफ़ लिंग्विस्टिक्स,* मास्को: यू. एस. एस. आर. एकेडमी ऑफ़ सांइस।

बॉखमैन, एल. 1989, 'दी डेवलपमेंट ऐंड यूज ऑफ़ क्राइटेरियन-रेफरेंस्ड टेस्ट ऑफ़ लैंग्वेज प्रोग्राम इवैल्युएशन', जॉनसन, आर. के. द्वारा संपादन, दी *सेकंड लैंग्वेज कॅरिकुलम,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ संख्या 242-58

बॉखमैन, एल. एफ. और पॉमर, ए. एस. 1996, *लैंग्वेज टेस्टिंग इन प्रैक्टिस,* ऑक्सफोर्ड, ऑक्सफोर्ड : यूनिवर्सिटी प्रेस।

बेकर, सी. 1988, *की इस्यूस इन बाइलिंगुएलिज़्म एंड बाइलिंगुएल एजुकेशन,* क्लेवडन: मल्टीलिंगुएल मैटर्स।

बेकर, सी. 1993, *फाउंडेशंस ऑफ़ बाइलिंगुएल एजुकेशन,* क्लेवडन: मल्टीलिंगुएल मैटर्स।

बेकर, सी. 2001, *फाउंडेशंस ऑफ़ बाइलिंगुएल एजुकेशन एंड बाइलिंगुएलिज़्म,* क्लेवडन: बाइलिंगुएल मैटर्स।

बमब्रोह, पी. 1994, *सिमुलेशंस इन इंग्लिश टीचिंग,* बकिंघम: ओपेन यूनिवर्सिटी प्रेस।

बाउमैन, जेड. 2001, *दी इंडिविजुएटेड सोसायटी.,* कैंब्रिज : पॉलिटी प्रेस।

बेयर, जे. 1986, *ए. सोशियोलिंग्विस्टिक इंवेस्टिगेशन ऑफ़ द इंग्लिश स्पोकेन बाई द एंग्लो इंडियंस इन मैसूर सिटी.* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

बीउमैंट, एम. 1996, *दी टीचिंग ऑफ़ रीडिंग स्किल्स इन सेकंड फॉरेन लैंग्वेज,* पतरास : दी हेलेनिक ओपेन यूनिवर्सिटी

बायलस्टोक, ई. 1978, "ए थ्योरीटिकल मॉडल ऑफ़ सेकंड लैंग्वेज लर्निंग", *लैंग्वेज लर्निंग,* 28:69:83

ब्लूम, बी. एस. 1956, *टेक्सोनॉमी ऑफ़ एजुकेशनल ऑब्जेक्टिव्स, खंड - । : कॉगनिटिव डोमेन,* न्यूयार्क : मैकाय।

बोडियू, पी. 1978 और 1993, 'व्हाट टॉकिंग मीस,' *ली फ्रांकाइस औवजर्ड* हुई 41:4-20,51-57

ब्रास, पी. 1974, *लैंग्वेज, रेलिजन एंड पॉलिटिक्स इन नार्थ इंडिया,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

ब्रेख्त, आर. डी. और इनगोल्ड, सी. डब्ल्यू. 1988, *टैपिंग ए नेशनल रिसोर्स: हरिटेज लैंग्वेजेस इन द यूनाइटेड स्टेट्स,* ई.आर.आई.सी. क्लियरिंग हाउस ऑन लैंग्वेजेस एंड लिंगुएस्टिक्स, वाशिंगटन, डी.सी।

ब्राउन, डी. एच. 1980, *प्रिंसिपल्स ऑफ़ लैंग्वेज लर्निंग एंड टीचिंग,* न्यू जर्सी: प्रेंटिस हॉल, इंक।

ब्राउन, के. 1984, *लिंगुएस्टिक टुडे,* सफॉक : फोंटाना।

ब्राउन, जे. डी. 1996, *टेस्टिंग इन लैंग्वेज प्रोग्राम्स,* लंदन: प्रेंटिस हॉल।

ब्रमफिट, सी. 1984, *कम्युनिकेटिव मैथॉडोलॉजी इन लैंग्वेज टीचिंग,* कैंब्रिज : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

ब्रमफिट, सी. जे. और जॉनसन. के. 1979, *दी कम्युनिकेटिव एप्रोच टू लैंग्वेज टीचिंग* ई.एल.बी.एस/ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

ब्रमफिट, सी. जे. 1980, *प्रॉब्लम्स ऐंड प्रिंसिपल्स ऑफ़ इंग्लिश लैंग्वेज टीचिंग,* ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

बायरम, एम. 1997, *डेवेलपिंग इंटरकल्चरल कम्युनिकेटिव कंपीटेंस इन फॉरेन लैंग्वेज टीचिंग: कॅरिकुलम प्लानिंग ऐंड पॉलिसी,* रिपोर्ट ऑफ़ वर्कशाप 13 ग्रेज: ई. सी. एम. एल.।

बटलर, जे. 1990, *जेंडर ट्रबल: फेमिनिज़्म एंड द सबवर्जन ऑफ़ आईडेंटिटी,* न्यूयार्क : रूटलेज।

कैमरन, डी. 1985, *फ़ेमिनिज़्म एंड लिंगुएस्टिक थ्योरी,* न्यूयार्क: सेंट मार्टिन प्रेस।

केनाले, एम. और स्वेन 1980, 'थ्यारेटिकल बायस ऑफ़ कम्युनिकेटिव एप्रोचेस् टू सेकंड-लैंग्वेज टीचिंग ऐंड टेस्टिंग', *एप्लॉयड लिंगुएस्टिक्स* 1:1-47

कैरोल, जे. बी. 1956 (संपादक), *लैंग्वेज, थॉट एंड रियलिटी: सेलेक्टेड राइटिंग्स ऑफ़ बेंजामिन लीहोर्फ,* न्यूयार्क: जॉन विले ऐंड संस।

सैनन, जे. और जेनेसी, एफ. (संपादक) 2001, *ट्रेंड्स इन बाइलिंगुल एक्वीजीशन,* जॉन बेंजामिंस।

चॉम्स्की, एन. 1957, *सिनटेक्टिक स्ट्रक्चर्स,* दी हेग: मौटेन कं.।

चॉम्स्की, एन. 1959, *रिव्यू ऑफ़ स्किनर्स वर्बल बिहेवियर.* लैंग्वेजेस 35.1.26-58

चॉम्स्की, एन. 1972, *लैंग्वेज एंड माइंड,* न्यूयार्क: हारकोर्ट ब्रास जोवानोविच।

चॉम्स्की, एन. 1996, *पॉवर्स एंड प्रोस्पेक्ट्स: रिफ़लेक्शंस ऑन ह्यूमन नेचर एंड द सोशल आर्डर,* दिल्ली: माध्यम बुक्स।

चॉम्स्की, एन. 1965, *आस्पेक्ट्स ऑफ़ द थ्योरी ऑफ़ सिनटेक्स,* कैंब्रिज : एम. आई. टी. प्रेस।

चॉम्स्की, एन. 1986, *नॉलेज ऑफ़ लैंग्वेज,* न्यूयार्क : प्रागर।

चॉम्स्की, एन. 1988, *लैंग्वेज एंड प्रॉब्लम्स ऑफ़ नॉलेज,* कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी.।

चेरीशोकस, जे. ई. 1990, *दी रोल ऑफ़ थ्योरीज ऑफ़ लैंग्वेज एंड लैंग्वेज लर्निंग इन द प्री-सर्विस, इन-सर्विस, ट्रेनिंग, एजुकेशन ऐंड डेवलपमेंट ऑफ़ लैंग्वेज टीचर्स, पीएच. डी., शोध प्रबंध,* स्कूल ऑफ़ इंग्लिश, यूनिवर्सिटी ऑफ़ डरहम, इंग्लैंड।

चेरीशोकस, एन. ई. 1988, *लर्नर नीड्स एंड सिलेबस डिजाइन,* एम. ए. का शोध प्रबंध, स्कूल ऑफ़ इंग्लिश, यूनिवर्सिटी ऑफ़ डरहम, इंग्लैंड।

चेरीशोकस, एन. ई. 1991, *लर्नर्स एवेयरनेस ऑफ़ देयर लर्निंग,* जेम्स, सी. और गैरेट्स, पी, द्वारा संपादित पुस्तक *लैंग्वेज एवेयरनेस इन द क्लासरूम,* लंदनः लांगमैन।

कोहन, ए. 1980, *टेस्टिंग लैंग्वेज एब्लिटी इन द क्लासरूम,* रौली, मासः न्यूबरी हाउस।

कोहन, ए. डी. 1975, *ए सोशियोलिंग्विस्टिक एप्रोच टू बाइलिंगुएल एजुकेशन,* रौली, मासः न्यूबरी हाउस पब्लिकेशन।

कॉमन यूरोपियन फ्रेमवर्क ऑफ़ रेफरेंस फॉर लैंग्वेज 2001, *लर्निंग, टीचिंग, एसेसमेंट काउंसिल ऑफ़ यूरोप*. कैंब्रिजः कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

कूपर, आर, एल. 1889, *लैंग्वेज प्लानिंग एंड सोशल चेंज,* कैंब्रिजः कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

कॉर्डर, पी. 1967, "सिग्निफिकेंश ऑफ़ लर्नर्स एरर्स", *इंटरनेशनल रिव्यू ऑफ़ एप्लॉयड लिंग्विस्टिक्स* 5: 162-169

काउंसिल ऑफ़ यूरोप, 1985, *लर्निंग एंड टीचिंग मॉडर्न लैंग्वेजेज फॉर कम्युनिकेशन,* स्ट्रेट्सबर्ग, प्रोजेक्ट सं.12

क्राफोर्ड, जे. 1991, *बाइलिंगुएल एजुकेशनः हिस्टरी, पॉलिटिक्स, थ्योरी एंड प्रैक्टिस,* लॉस एंजिल्सः बाइलिंगुएल एजुकेशन सीरीज।

क्रहॉल, एन. 1992 (संपादक), *डेमोक्रेटिकली स्पीकिंग,* केपटाउनः राष्ट्रीय भाषा परियोजना।

क्रिस्टल, डी. 1887, *दी कैंब्रिज इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ लैंग्वेज,* कैंब्रिज : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

कमिंस, जे. और डेनेसी, एम. 1990, *हरिटेज लैंग्वेजेज : दी डेवलपमेंट एंड डिनायल ऑफ़ कनाडा, ज लिंग्विस्टिक रिसोर्स,* ऑवर स्कूल्स/ऑवरसेल्फस् ऐंड गारामौंड प्रेस. टोरोंटो।

कमिंस, जे. 1976, *दी इंफ्लुएंस ऑफ़ बाइलिंगुएलिज़्म ऑन कॉगनिटिव ग्रोथः ए सिंथेसिस ऑफ़ रिसर्च फाइंडिंग्स ऐंड एक्सप्लेनेटरी हाइपोथिसिस, वर्क पेपर्स ऑन बाइलिंगुएलिज़्म* 9:1-43

कमिंस, जे. 1981 बी, 'दी रोल ऑफ़ प्राइमरी लैंग्वेज डेवलपमेंट इन प्रोमोटिंग एजुकेशनल सक्सेस फॅार लैंग्वेज माइनारिटी स्टूडेंट्स,' कैलिफोर्निया स्टेट डिपार्टमेंट ऑफ़ एजुकेशन में *स्कूलिंग एंड लैंग्वेज माइनारिटी स्टूडेंट्सः ए थ्योरीटिकल फ्रेमवर्क,* लास एंजिल्सः इवैल्यूएशन, डिसीमिनेशन ऐंड एसेसमेंट सेंटर।

कमिंस,जे. 1984, *बाइलिंगुएलिज़्म एंड स्पेशल एजुकेशनः इश्यूज इन एसेसमेंट एंड पेडॉगॉजी,* क्लेवडन : मल्टीलिंग्वुएल मैटर्स।

कमिंस, जे. 2001, *नेगोशिएटिंग आइडेंटिटीज : एजुकेशन फॉर इंपॉवरमेंट इन ए डाइवर्स सोसायटी,* ओंटारियो, सी.एः कैलिफोर्निया एसोसिएशन फॉर बाइलिंग्वुएल एजुकेशन।

कमिंस, जे. और स्वाइन, एम. 1986, *बाइलिंगुएलिज़्म इन एजुकेशन,* लंदनः लांगमैन।

दासगुप्ता, जे. 1970, *लैंग्वेज कनफ्लिक्ट ऐंड नेशनल डेवलपमेंट : ग्रुप पॅालिटिक्स ऐंड नेशनल लैंग्वेज पॉलिसी इन इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

दासवानी,सी. जे. और परचानी, एस. 1993, *सोशियो-लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इंडियन सिंधी,* मैसूरः सी. आई. आई. एल.।

डेविस, ए. 1990, *प्रिंसिपल्स ऑफ़ लैंग्वेज टेस्टिंग,* लंदन बेसिल ब्लैकवैल।

डेविस, ए. 1980, *प्रिंसिपल्स ऑफ़ लैंग्वेज टेस्टिंग,* ऑक्सफोर्डः परगामॉन प्रेस।

डेलीगियानी, ए. और उनके सहयोगी 2001, 'दी फर्स्ट बालकन सिंपोजियम ऑन कल्चरल अंडरस्टैंडिंग थ्रू ई. एफ.एल.' ब्रिज इश्यू 7

डेलोर, जे. 1996, *लर्निंग: द ट्रेजर विदिन.* पेरिस : यूनेस्को।

देवकी, एल. 1990, *एन एनोटेटेड बिबलियोग्राफी ऑन बाइलिंगुएलिज़्म, बाइलिंगुएल एजुकेशन एंड मीडियम ऑफ़ इंस्ट्रक्शन,* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

डोरियन, एन. सी. 1981, *लैंग्वेज डेथ,* फिलाडेल्फिया : यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेंसिलवानिया प्रेस।

डगिल, पी. और नॉट, आर. 1988, *दी प्राइमरी लैंग्वेज बुक,* ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

दुआ, एच. आर. 1985, *लैंग्वेज प्लानिंग इन इंडिया,* दिल्ली: हरनाम पब्लिशर्स।

दुआ, एच. आर. 1986, *लैंग्वेज यूज, एट्टीटयूड्स ऐंड आइडेंटिटी अमांग लिंग्विस्टिक मॉइनारिटीज़,* मैसूर: सी आई. आई. एल.।

दत्ता, बरुआ, पी. एन. (संपादक) 1999, *लैंग्वेजेज़ ऑफ़ द नार्थ–ईस्ट,* मैसूर : सी. आई. आई. एल.।

एज, जे. 1989, *मिस्टेक्स ऐंड करेक्शन,* लंदन: लांगमैन।

एज, जे. और रिचर्ड्स, के. 1993 (संपादक), *टीचर्स डेवलप टीचर रिसर्च पेपर्स इन क्लासरूम रिसर्च एंड टीचर डेवलपमेंट,* लंदन: हेनीमैन।

एडवर्ड्स, वी. 1998, *दी पॉवर ऑफ़ बैबेल : टीचिंग एंड लर्निंग इन मल्टीलिंग्वुएल क्लासरूम,* स्टोक–ऑन–ट्रेंट: ट्रेंथम बुक।

एडवर्ड्स, वी. और वॉकर, एस. 1995, *बिल्डिंग ब्रिज्स: मल्टीलिंगुएल रिसोर्सेस फॉर चिल्ड्रेन,* क्लेवडन : मल्टीलिंगुएल मैटर्स।

एडवर्ड्स, वी. 1998, *मल्टीलिंग्विलिज़्म इन द इंग्लिश स्पीकिंग वर्ल्ड,* ऑक्सफोर्ड: ब्लैकवेल।

एलिस, आर. 1985, *अंडरस्टैंडिंग सेकंड लैंग्वेज एक्वीजीशन.* ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

फेयरक्लॉघ, एन. 1992 (संपादक), *क्रिटिकल लैंग्वेज एवेयरनेस,* हारलो: लांगमैन।

फिशमैन, जे. ए. 1978 (संपादक), *एडवांसेस इन द स्टडी ऑफ़ सोसाइटल मल्टीलिंगुएलिज़्म,* द हेग माउटन।

फिशमैन, जे. ए. 1966, *लैंग्वेज लॉयल्टी इन द यूनाइटेड स्टेट्स. दी हेग: माउटन।*

फाउलर, आर. और उनके सहयोगी (संपादक) 1979, *लैंग्वेज एंड कंट्रोल,* लंदन: रूटलेज।

फ्रेंकनबर्ग–गार्सिया, ए. 1999. *'प्रोवाइडिंग स्टूडेंट राइटर्स विद प्री–टेक्स्ट फीडबैक'* ई. एल. टी. 53.2:101–106

फ्रीमैन, आर. 1998, *बाइलिंगुएल एजुकेशन एंड सोशल चेंज,* क्लेवडन: मल्टीलिंगुएल मैटर्स।

गाल, एस. 1979, *लैंग्वेज शिफ्ट: सोशल डीटरमिनेंट्स ऑफ़ लिग्विस्टिक चेंज इन बाइलिंगुएल* आस्ट्रिया, न्यूयार्क: एकेडमिक प्रेस।

गार्डनर, एच. 1993, *मल्टीपल इंटेलीजेंस:* द *थ्योरी इन प्रैक्टिस,* न्यूयॉर्क: बेसिक बुक्स।

गार्डनर, आर. सी. 1977, *सोशल फैक्टर्स इन सेकंड लैंग्वेज एक्वीजीशन एंड बाइलिंगुएलिटी,* कूस, डब्ल्यू. एच.,

टेलर, डी. एम. और ट्रेंबले, एम. ए. (संपादक), *दी इंडिविजुएल लैंग्वेज ऐंड सोसायटी इन कनाडा,* ओटावा: द कनाडा कौंसिल।

गार्डनर, आर.सी. 1985, *सोशल साइकोलॉजी ऐंड सेकंड लैंग्वेज लर्निंग: दी रोल ऑफ़ एट्टीट्यूड्स एंड मोटिवेशन,* लंदन: एडवर्ड आर्नल्ड।

गार्डनर, आर. सी. 1988, दी *सोशियो-एजुकेशनल मॉडल ऑफ़ सेकंड लैंग्वेज-लर्निंग: एजंपशंस, फाइंडिंग्स एंड इश्यूज, लैंग्वेज लर्निंग* 38:101-126

गार्डनर, आर. सी. और लैंबर्ट, डब्ल्यू. ई. 1972, *एट्टीट्यूड्स एंड मोटिवेशन इन सेकंड लैंग्वेज लर्निंग,* रौली मासाचुसट्स : न्यूबरी हाउस पब्लिशर्स।

गिरिधर, पी. पी. 1992, *ए केस ग्रामर ऑफ़ कन्नड़,* मैसूर : सी. आई. आई. एल।

गॉवर, आर., फिलिप्स,डी. और वाल्टर्स, एस. 1995, *टीचिंग प्रैक्टिस हैंडबुक,* ऑक्सफोर्ड: हेनीमैन।

ग्रुंडी, पी. 1993, *न्यूजपेपर्स,* ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

गुहा, आर. 2005, *हिंदी अगेंस्ट इंडिया,* द हिन्दू में नयी दिल्ली में 16 जनवरी 2005

गंपर्ज, जे. जे. और हाइम्स, डी. एच. 1972 (संपादक), *डायरेक्शन इन सोशियो-लिंग्विस्टिक: द इथनोग्राफ़ी ऑफ़ कम्युनिकेशन,* न्यूयार्क, होल्ट: रिनेहार्ट और विंसटन।

गुप्ता, ए. 1995, *मीडियम ऑफ़ इंस्ट्रक्शन इन ए बाइलिंगुएल कंटेक्स्ट,* अग्निहोत्री, आर. के. खन्ना, ए. एल. द्वारा संपादित आर ए. एल. 4 नयी दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस, 201-211

गुप्ता, आर. एस. 1994 *सेलेक्टिंग रीडिंग मैटेरियल्स: सम की कंसीडरेशंस.* अग्निहोत्री, आर. के. और खन्ना, ए. एल. 1994 (संपादकगण), *सेकंड लैंग्वेज एक्वीजीशन,* नयी दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस।

हैबरमास, जे. 1998, *ऑन द प्रागमैटिक्स ऑफ़ कम्युनिकेशन,* कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।

हैबरमास, जे. 1998, *दी फिलॉस्फिकल डिसकोर्स ऑफ़ मॉडर्निटी,* कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।

हकुता, के. 1986, *मिरर ऑफ़ लैंग्वेज: दी डिबेट ऑन बाइलिंगुएलिज़्म,* न्यूयार्क: बेसिक बुक्स।

हैलीडे, एम. ए. के. और हसन, आर. 1976, *कोहेशन इन इंग्लिश,* लंदन : लांगमैन।

हैलीडे, एम. ए. के. 1975, *लर्निंग हाउ टू मीन,* लंदन: एडवर्ड आर्नल्ड।

हारमर, जे. 1995, *दी प्रैक्टिस ऑफ़ इंग्लिश लैंग्वेज टीचिंग,* लंदन: लांगमैन।

हैरिस, डी.पी. 1969, *टेस्टिंग इंग्लिश एज ए सेकंड लैंग्वेज,* न्यूयार्क: मैकग्रा हिल।

हैरिसन, ए. 1983, *ए. लैंग्वेज टेस्टिंग हैंडबुक,* लंदन: मैकमिलन।

हैग, के. और उनके सहयोगी 1995 (संपादकगण), *मल्टीलिंगुएल एजुकेशन फॉर साउथ अफ्रीका,* जोहांसबर्ग: हैनिमैन।

हिल, जी. 1998, *एडवांस्ड साइकोलॉजी थ्रू डायग्राम्स,* ऑक्सफॉर्ड रीविजन गाइड्स : ए लेवल साइकोलॉजी, ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

हारविट्ज, ई. के., हारविट्ज, एम. बी. और कोप, जे. 1986, *"फॉरेन लैंग्वेज क्लासरूम एनक्साइटी", दी मॉडर्न लैंग्वेज जर्नल* 70: 125-132

हाउस, एस. 1997, *एन इंट्रोडक्शन टू टीचिंग इंग्लिश टू चिल्ड्रेन,* न्यूयार्क: रिचमोंड पब्लिशिंग।

हयूज, ए. 1989, *टेस्टिंग फॉर लैंग्वेज टीचर्स, कैंब्रिज:* कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

हचिंसन, टी. और टोरेस, ई. 1994, *दी टेक्स्टबुक एज एन एजेंट ऑफ़ चेंज,* ई.एल.टी. जर्नल 48:315-328

हाइलैंड, के. 1990, *प्रोवाईडिंग प्रोडक्टिव फीडबैक,* ई.एल.टी. 4.4.4

ईलिच, आई. 1981, "टौट मदर लैंग्वेज एंड वर्नाकुलर टंग", पटनायक डी. पी. 1981 *में मल्टीलिंगुएलिज्म एंड मदर टंग एजुकेशन,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

इटागी, एन. एच. और सिंह एस. के. (संपादकगण) 2002, *लिंग्विस्टिक लैंडस्केपिंग इन इंडिया,* मैसूर: सेंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ़ इंडियन लैंग्वेजस एंड महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय।

इटागी, एन. एच. (संपादक) 1994, *स्पेटियल ऑस्पेक्ट्स ऑफ़ लैंग्वेजस,* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

ईलिच, आई. 1981, प्रीफेस टू पटनायक, 1981, *मल्टीलिंगुएलिज़्म एंड मदर टंग एजुकेशन,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

जेसपर्सन, ओ. 1922, *लैंग्वेज: इट्स नेचर, डेवलपमेंट एंड ऑरिजिन,* न्यूयार्क: डब्ल्यू. डब्ल्यू. नार्टन।

झिंगरन, डी. 2005, *लैंग्वेज डिसएडवांटेज: दी लर्निंग चैलेंजस इन प्राइमरी एजुकेशन,* नयी दिल्ली: ए. पी. एच. पब्लिशिंग कॉरपोरेशन।

जोंस, के. 1988, *इंटरएक्टिव लर्निंग इवेंट्स: ए गाइड फॉर फैसिलिटेटर्स,* लंदन: कीगन पेज।

किर्क, आर. 1987, *लर्निंग इन एक्शन-एक्टिविटीज़ फॉर पर्सनल एंड ग्रुप डेवलपमेंट,* ऑक्सफोर्ड: बेसिल ब्लैकवेल लिमिटेड।

खन्ना, ए. एल. 1983, *ए स्टडी ऑफ़ सम लर्नर वेरिएवल्स इन लर्निंग इंग्लिश एज ए सेकंड लैंग्वेज,* पीएच. डी. शोध प्रबंध, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

खन्ना, ए. एल. और अग्निहोत्री, आर.के. 1982, *"लैंग्वेज एचिवमेंट एंड सम सोशल साइकोलॉजिकल वैरिएवल्स",* सी. आई. ई. एफ. एल. बुलेटिन 18.1 और 2:41-51

खन्ना. ए. एल. और अग्निहोत्री, आर. के. 1984, "सम प्रेडिक्टर्स ऑफ़ स्पीच स्किल्स: ए सोशियो-साइकोलॉजिकल स्टडी", *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ ड्रविडियन लिंग्विस्टिक्स* 13.2: 229-51

खूबचंदानी, एल. एम. 1983, *प्लूरल लैंग्वेजस, प्लूरल कल्चर्स,* ईस्ट, वेस्ट सेंटर, यूनिवर्सिटी ऑफ़ हवाई।

खूबचंदानी, एल. एम. 1988, *लैंग्वेज इन ए प्लूरल सोसायटी,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास और शिमला आई. आई. ए. एस.।

किंटस्च, डब्ल्यू. 1974, *दी रिप्रजेंटेशन ऑफ़ मीनिंग इन मैमोरी,* हिल्सडेल, एन. जे: अर्लबॉम।

किंटस्च, डब्ल्यू. 1988, 'दी रोल ऑफ़ नॉलेज इन डिसकोर्स कंप्रिहेंसन : ए कंस्ट्रक्शन-इंटीग्रेशन मॉडेल', *साइकॉलोजिकल रिव्यू,* 95:163-82

क्राषेन, एस. डी. 1981, *सेकंड लैंग्वेज एक्वीजिशन एंड लर्निंग,* ऑक्सफोर्ड: पर्गामॉन प्रेस।

क्राषेन, एस. डी. 1982, *प्रिंसिपल्स एंड प्रैक्टिस इन सेकंड लैंग्वेज एक्वीजीशन,* ऑक्सफोर्ड: पर्गामॉन प्रेस।

क्राषेन, एस. डी. 1985, *दी इनपुट हाइपोथिसिस,* ऑक्सफोर्ड : पर्गामॉन प्रेस।

क्राषेन, एस. डी. 1988, *सेकंड लैंग्वेज एक्वीजीशन एंड सेकंड लैंग्वेज लर्निंग,* प्रेंटिस हॉल इंटरनेशनल (यू. के.) लिमिटेड।

क्राषेन, एस. डी. 1976, *फॉर्मल एंड इनफॉर्मल इनवायरनमेंट्स इन लैंग्वेज एक्वीजीशन ऐंड लैंग्वेज लर्निंग,* टी. ई. एस. ओ. एल. *त्रैमासिक* 10:157-168

क्रेश, जी. 1976 (संपादक), *हैलीडे: सिस्टम एंड फंक्शन इन लैंग्वेज,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

क्रेश, जी. 1986, *लिंग्विस्टिक प्रोसेस इन सोशियो-कल्चरल प्रैक्टिस,* ऑक्सफॉर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

क्राउज, एम. ए. 1992, *कम्युनिकेटिव इंग्लिश,* लंदन: मास्की मिलर लांगमैन।

कुमार, के. 2001, *स्कूल की हिंदी,* पटना: राजकमल।

कुमार, के, 2001, *प्रेजुडीस ऐंड प्राइड: स्कूल हिस्टरीज़ ऑफ़ दी फ्रीडम स्ट्रगल,* नयी दिल्ली: वाइकिंग/पेंग्विन।

लेबोव, डब्ल्यू. 1966, *दी सोशल स्ट्रेटिफिकेशन ऑफ़ इंग्लिश इन न्यूयॉर्क सिटी,* वाशिंगटन डी. सी. : सेंटर फॉर एप्लॉयड लिंग्विस्टिक्स।

लेबोव, डब्ल्यू., 1971, 'दी नोशन ऑफ़ "सिस्टम" इन क्रियोल स्टडीज़' हाइम्स, डी. एच. 1976 (सं.) में *पिडगाइनाइजेशन ऐंड क्रियोलाइजेशन ऑफ़ लैंग्वेज़,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

लेबोव, डब्ल्यू. 1972, सोशियो-लिंग्विस्टिक पैटर्न्स, फिलाडेल्फिया: यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेंसिलवानिया प्रेस।

लाडो, आर. 1957, *लिंग्विस्टिक्स एक्रॉस कल्चर्स,* मिशिगन : यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिशिगन प्रेस।

लेकॉफ, आर. 1975, *लैंग्वेज एंड वुमैंस प्लेस, न्यूयार्क:* हार्पर एंड रो।

लेकॉफ, आर. 1990, *टॉकिंग पावर : दी पॉलिटिक्स ऑफ़ लैंग्वेज इन ऑवर लाइव्स,* न्यूयॉर्क: बेसिक।

लाल, एस. एम. 1986, *कनवर्जेंस ऐंड लैंग्वेज शिफ्ट इन ए लिंग्विस्टिक मॉइनॉरिटी : ए सोशियो-लिंग्विस्टिक स्टडी ऑफ़ तमिल्स इन बंगलोर सिटी,* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

लार्सन-फ्रीमैन, डी. 1986, *टेक्निक्स ऐंड प्रिंसिपल्स इन लैंग्वेज टीचिंग,* ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

ली, डी. 1992, कम्पीटिंग डिसकोर्सेस, लंदन: लांगमैन।

ली, पेज, आर. बी. और ताबुरेट, कीलर, ए. 1985, *एक्ट्स ऑफ़ आईडेंटिटी,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

लिट्लजॉन, ए. 1992, *व्हाई आर ई. एल. टी. मैटेरियल्स* द *वे दे आर,* अप्रकाशित, पीएच. डी. शोधप्रबंध, लंकास्टर यूनिवर्सिटी।

लिट्लजॉन, जी. (1992), 'शैटरिंग द साइलेंस', *प्रोफ़ेशनल इंवेस्टर,* मई, पृ. सं. 20 -22

लिट्लजॉन, ए. 1999, 'लैंग्वेज लर्निंग टॉस्क्स ऐंड एजुकेशन', *इंग्लिश टीचिंग प्रोफेशनल 10*

लिट्लवुड, डब्ल्यू. 1981, *कम्युनिकेटिव लैंग्वेज टीचिंग,* कैंब्रिज : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

लांग, जी. 1996, *फंक्शनल इंग्लिश ग्रामर,* कैंब्रिज : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

मैकनामरा, जे. (संपादक)1977, *लैंग्वेज लर्निंग ऐंड थॉट,* न्यूयॉर्क : एकेडमिक प्रेस।

मैकलघलिन, बी. 1987, *थ्योरीज ऑफ़ सेकंड लैंग्वेज लर्निंग,* लंदन: एडवर्ड आर्नल्ड।

मालामाह–थॉमस, ए. 1987, *क्लासरूम इंटरेक्शन,* ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

मल्लिकार्जुन, बी. 1993, *ए. डिसक्रिप्टिव एनालिसिस ऑफ़ येरावा,* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

मैकडोनाघ, जे. और शॉ,सी. 1993, *मैटेरियल्स एंड मैथड्स इन ई. एल. टी : ए टीचर्स गाइड,* ऑक्सफोर्ड : ब्लैकवैल।

मैडगाइस, पी. और मालडेरेज़, ए. 1966, *चेंजिंग पर्सपेक्टिव इन टीचर एजुकेशन,* ऑक्सफॉर्ड: हैनीमैन।

मिलानोविक, एम., 1995, *यू. सी. एल. ई. एस. स्टडीज़ इन लैंग्वेज टेस्टिंग, खंड 1,2,3,4,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

शिक्षा मंत्रालय, शिक्षा आयोग “कोठारी कमीशन” 1964 –1966, *शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास,* शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 1966

लर्निंग विदाउट बर्डेन, राष्ट्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट, शिक्षा अधिनियम, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग अक्तूबर, 2004

नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन, 1986, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, नयी दिल्ली।

पंजाब स्कूल एजुकेशन बोर्ड कैलेंडर, खंड II 2002 एकेडमिक रेगुलेशंस, एस. ए. एस. नगर : मोहाली पब्लिशर्स।

मिश्रा, बी. जी. और एच. आर. दुआ 1980, *लैंग्वेज यूज इन हिमाचल प्रदेश,* मैसूर : सी. आई. आई. एल.।

मोहंती, अजीत के. 1994, *बाइलिंगुएलिज़्म इन ए मल्टीलिंगुएल सोसाइटी: साइको–सोशल ऐंड पेडागॉजिकल इंप्लीकेशंस,* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

मोनिआपल्ली, एम. एम. और एस. आर. प्रह्लाद और वी. शशिकुमार, 1983, *इंग्लिश फॉर एडल्ट्स आई.,* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

मुखर्जी, ए. 1981, *लैंग्वेज मैंटेनेंस ऐंड लैंग्वेज शिफ्ट एमंग द पंजाबीज एंड बंगालीज़ इन दिल्ली,* दिल्ली : बाहरी पब्लिकेशंस।

मुखर्जी, एन., पटनायक, बी. एन. और अग्निहोत्री, आर. के. 2000, *दि आर्किटेक्चर ऑफ़ लैंग्वेज,* दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

मर्फी, टी. 1992, *म्यूजिक एंड सांग,* ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

नागराज, जी. 1996, *इंग्लिश लैंग्वेज टीचिंग,* कलकता: ओरिएंट लांगमैन।

एन. सी. ई. आर. टी. 2001, नेशनल कॅरिकुलम फ्रेमवर्क फॉर स्कूल एजुकेशन (पुन: मुद्रित संस्करण) सितंबर, 2001, एन. सी. ई. आर. टी., नयी दिल्ली।

नरसिम्हा राव, के. वी. वी. एल. और के. पी. आचार्य, 1992, *ए बिबलियोग्राफी ऑफ़ लैंग्वेज टीचिंग आर्ट्स : स्टडीज डन इन इंडियन यूनिवर्सिटी एंड रिसर्च इंस्टिट्यूशंस,* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

नारायण, के. 2004, *अक्का: ए डॉयलाग ऑन वुमेन थ्रू थियेटर इन इंडिया (छह सी.डी. सहित),* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

नेहरू, जे. 'फार्म द फंक्शन ऑफ़ लैंग्वेज', नेशनल हेराल्ड, 13 फ़रवरी, 1949, गोपाल, एस. और आयंगर, ए. 2003 (संपादक) में *दी इशेंसियल राइटिंग्स ऑफ़ जे. नेहरू,* ऑक्सफ़ोर्ड: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

नूनान, डी. 1988, *सिलेबस डिजाइन,* ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

नूनान, डी. 1988, *दी लर्नर सेंटर्ड कॅरिकुलम-ए स्टडी इन सेकंड लैंग्वेज टीचिंग,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

नूनान, डी. 1989, *अंडरस्टैडिंग लैंग्वेज क्लासरूम्स,* प्रेंटिस हॉल।

नूनान, डी. 1991, *लैंग्वेज टीचिंग मैथोडोलॉजी,* लंदन : प्रैंटिस हॉल।

नूटॉल, सी. 1996, टीचिंग रीडिंग स्किल्स इन फॉरेन लैंग्वेज, ऑक्सफोर्ड : हैनीमैन।

ओलर, जे. डब्ल्यू. और जोंज, जे. 1994, *क्लोज एंड कोहेरेंस,* क्रानबरी, एन. जे: एसोसियेटेड यूनिवर्सिटी प्रेस।

ओलर, जे. डब्ल्यू. जूनियर 1979, *लैंग्वेज टेस्ट्स एट स्कूल,* लंदन: लांगमैन।

ओलर, जॉन. डब्ल्यू. (जूनियर) 1983, *इश्यूज इन लैंग्वेज टेस्टिंग रिसर्च,* रौली: न्यूबरी हाउस पब्लिशर्स, इंक.।

पंडित, पी. बी. 1969, ''कौमेंट्स ऑन जे. जे. गंपर्जस पेपर: हाउ कैन वी डिसक्राइव ऐंड मेजर द बिहेवियर ऑफ़ बाइलिंगुएल ग्रुप्स?" कैली, एल. जी. (संपादक) में, *डिसक्रिप्शन, ऐंड मेजरमेंट ऑफ़ बाइलिंगुएलिज़्म,* टोरंटो: यूनिवर्सिटी ऑफ़ टोरंटो प्रेस. पृ. सं. 255-256

पंडित, पी. बी. 1972, *इंडिया एज ए सोशियो-लिंगुएस्टिक एरिया,* पूना: पूना विश्वविद्यालय।

पंडित, पी. बी. 1988, 'टूवार्ड्स ए ग्रामर ऑफ़ वैरिएशन', खूबचंदानी, एल. एम. 1988 (संपादक) में, *लैंग्वेज इन ए प्लूरल सोसायटी,* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास और शिमला आई. आई. ए. एस.।

पापाकंस्टेटीनियू, ए. 1988, *एप्लायड लिंग्विस्टिक्स : एन इंट्रोडक्शन टू द लर्निंग ऐंड टीचिंग ऑफ़ द फॉरेन लैंग्वेज,* अंग्रेज़ी विभाग: यूनिवर्सिटी ऑफ़ एथेंस।

पापाइफथमियू-लाइटरा, एस. 1981, *कम्यूनिकेटिंग ऐंड लर्निंग स्ट्रेटजीज इन इंग्लिश एज़ ए फॉरेन लैंग्वेज विद रेफरेंस टू द ग्रीक लर्नर ऑफ़ इंग्लिश,* पीएच. डी. शोध प्रबंध, इंस्टिट्यूट ऑफ़ एजुकेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ़ लंदन।

पटनायक, डी. पी. 1981, *मल्टीलिंगुएलिज्म एंड मदर-टंग एजुकेशन,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

पटनायक, डी. पी. 1986, *स्टडी ऑफ़ लैंग्वेजेज,* ए रिपोर्ट, नयी दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी।

पील, ई. और लैंबर्ट, डब्ल्यू, ई. 1962, 'दी रिलेशन ऑफ़ बाइलिंगुएलिज़्म टू इंटेलिजेंस', *साईकोलॉजिकल मोनोग्राफ़्स 76*

राजश्री, के. एस. 1986, *एन इथनो लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ धारावी,* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

रस्किन, वी. और वाइजर, आई. 1987, *लैंग्वेज एंड राइटिंग: एप्लीकेशन ऑफ़ लिंग्विस्टिक्स टू रेहटोरिक ऐंड कंपोजीशन,*

नॉरवुड, एन.जे.: एबलैक्स पब्लिशिंग कॉरपोरशन।

रिचर्ड्स, जे. सी. (संपादक) 1978, *अंडरस्टैंडिंग सेंकड एंड फॅारेन लैंग्वेज लर्निंग: इश्यूज एंड एप्रोचेस,* रौली, मास: न्यूबरी हाउस। रिचर्ड्स, जे., प्लेट, जे. और वेबर, एच. 1985, *लांगमैन डिक्शनरी ऑफ़ एप्लायड लिंग्विस्टिक्स,* लंदन: लांगमैन।

रिचर्ड्स, जे. सी. 1990, *दी लैंग्वेज टीचिंग मैट्रिक्स,* कैंब्रिज : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

रिचर्ड्स, जे. सी. और रोजर्स, टी. एस. 1981, *एप्रोचेज एंड मैथॅड्स इन लैंग्वेज टीचिंग,* यूनिवर्सिटी ऑफ़ हवाई, मनोआ: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

रोबर्ट, जे. 1995, 'सेल्फ-डाइरेक्टेड क्लासरूम इंक्वायरी बाई टीचर्स : नॉन बेनिफिट्स, एन एसेसमेंट ऑफ़ क्रिटिसिज़्म, ऐंड इंप्लीकेशंस फॉर टीचर-रिसर्चर एक्टिविटी', *दी लैंग्वेज कॅरिकुलम: डायनामिक्स ऑफ़ चेंज* (खंड-1), रिपोर्ट ऑफ़ द इंटरनेशनल सेमिनार, सी. आई. ई. एफ. एल.।

सचदेवा, आर., 2001, *लैंग्वेज एजुकेशन इन नागालैंड : सोशियो-लिंग्विस्टिक डाइमेंशन,* नयी दिल्ली : रीजेंसी पब्लिकेशंस।

सायर, डी. 1924, दी इफैक्ट ऑफ़ बाइलिंगुएलिज़्म ऑन इंटेलिजेंस, *ब्रिटिश जर्नल ऑफ़ साइकोलॉजी* 14:25-38

सहगल, ए. 1983, ''ए सोशियो-लिंग्विस्टिक स्टडी ऑफ़ द स्पोकेन इंग्लिश ऑफ़ द दिल्ली इलाइट एम. फिल का शोध प्रबन्ध दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

संगल, आर., बेंद्रे, एस. एम. और सिंह यू. एन. 2004, *रिसेंट एडवांसेस इन नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग,* मैसूर. सी. आई. आई. एल.।

शुमान, जे. 1978 ए, दी *पिजइनाइजेशन प्रोसेस,* रौली, मास: न्यूबरी हाउस।

स्क्राइवनर, जे. 1994, *लर्निंग टीचिंग,* ऑक्सफोर्ड : हैनीमन।

सेमिनार, 2000, *रीडिजायनिंग कॅरिकुला:* विशेष अंक संख्या 493, नयी दिल्ली : रोमेशराज ट्रस्ट।

शर्मा, पी. जी. और कुमार, एस. 1977 (संपादक), *इंडियन बाईलिंगुएलिज़्म,* आगरा: केंद्रीय हिंदी संस्थान।

शर्मा, आर. और ई. अन्नामलाई 2003, *इंडियन डायस्पोरा : इन सर्च ऑफ़ आईडेंटिटी,* मैसूर: सी. आई. आई. एल. ।

श्यामला, के. सी. 1991, *स्पीच एंड लैंग्वेज बिहेवियर ऑफ़ द सेरेब्रल पालसिड,* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

सिंह, आर. 1997 (संपादक), *ग्रामर, लैंग्वेज एंड सोसायटी,* नयी दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस।

सिंह, यू. एन. और मनिरूज्जुमान, 1983, *डायग्लोसिया इन बंगलादेश एंड लैंग्वेज प्लानिंग.* कोलकाता: ज्ञानभारती।

स्कतनब-कंगास, टी. और कमिंस, जे. 1988 (संपादक), *बाइलिंगुएल एजुकेशन : फ्रॅाम शैम टू स्ट्रगल,* क्लेवडन: मल्टीलिंगुएल मैटर्स।

स्पेडी, डब्ल्यू. और मार्शल, के 1994, 'लाइट, नॉट हीट, ऑन ओ.बी.ई.' दी *अमेरिकन स्कूल बोर्ड जर्नल* 18:29:33

स्पोल्स्की, बी. 1978, *एप्रोचेज टू लैंग्वेज टेस्टिंग,* आरलिंगटन, वा : सेंटर फॉर एप्लॉयड लिंग्विस्टिक्स।

स्प्रोट, आर. 1984, *ए साइंटिफिक कॅरिकुलम इन लिंग्विस्टिक्स* फॉर *यूज इन सेकंडरी स्कूल्स,* एम. आई. टी: एम. एस.।

श्रीधर, के. के. 1989, *इंग्लिश इन इंडियन बाइलिंगुएलिज़्म,* नयी दिल्ली : मनोहर।

श्रीवास्तव, आर. एन. 1979, *लैंग्वेज मूवमेंट अगेंस्ट हिंदी एज एन ऑफिशियल लैंग्वेज,* अन्नामलाई, ई, 1979 (संपादक) में, *लैंग्वेज मूवमेंट्स इन इंडिया,* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

श्रीवास्तव, आर. एन. 1988, *सोसाइटल बाइलिंगुएलिज़्म ऐंड बाइलिंगुएल एजुकेशन: ए स्टडी ऑफ़ द इंडियन सिचुएशन,* पॉलस्टन, सी. (संपादक), *इंटरनेशल हैंडबुक ऑफ़ बाइलिंगुएलिज़्म ऐंड बाइलिंगुएल एजुकेशन,* न्यूयार्क: ग्रीनवुड प्रेस।

श्रीवास्तव, आर. एन. 1984 (संपादक), *भाषाशास्त्र के सूत्रधार,* नयी दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

स्टीनबर्ग, एफ़. एस. और हारविट्ज, ई. के. 1986, *दी इफ़ेक्ट ऑफ़ इंड्यूस्ड एनक्जइटी ऑन द डेनोटेटिव एंड इंटरप्रेटिव कंटेट ऑफ़ सेकंड लैंग्वेज स्पीच,* टी. ई. एस. ओ. एल. *त्रैमासिक,* 20:131-136

स्टर्न, एच. एच. 1983, *फ़ंडामेंटल कंसेप्ट्स ऑफ़ लैंग्वेज टीचिंग,* ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

स्टब्बस, एम. 1980, *लैंग्वेज एंड लिटरेसी: द सोशियो लिंग्विस्टिक्स ऑफ़ रीडिंग एंड राइटिंग,* लंदन: रौली एंड कीगन पॉल।

सुबैया, पी. 2004, *एन इंट्रोडक्शन टू इवैल्यूएशन टर्मिनोलॉजी,* सी.आई.आई.एल. : मैसूर।

सुबैया, पी. (संपादक) 2005, *टेस्ट ऑफ़ लैंग्वेज प्रोफ़िसियंसी : हिंदी*, मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

टैनर, आर. और ग्रीन, सी. 1998, *टास्क्स फॉर टीचर एजुकेशन,* लंदन: लांगमैन।

तिवारी, बी. एन., चतुर्वेदी, एम. और सिंह, बी. 1972 (संपादकगण), *भारतीय भाषा विज्ञान की भूमिका,* दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

थिरूमलाई, एम. एस. और एस. जी. गायत्री, 1991, *स्पीच ऑफ़ द हियरिंग इंपेयर्ड,* मैसूर: सी. आई. आई. एल.।

थॉम्पसन, आई. 1998, *बाइलिंगुएलिज़्म : सम ऑस्पेक्ट्स ऑफ़ बाइलिंगुएल चिल्ड्रेंस कम्युनिकेशन डिफीकल्टीज़ विद रेफरेंस टू फर्स्ट लैंग्वेज मैंटेनेंस ऐंड सेकंड लैंग्वेज इंप्रूवमेंट,* एम. ए. का शोधप्रबंध, स्कूल ऑफ़ इंग्लिश, यूनिवर्सिटी ऑफ़ डरहम, इंग्लैंड।

थोर्नबरी, एस. 1999, *हाउ टू टीच ग्रामर,* लंदन : लांगमैन।

टॉमलिंसन, बी. 1998 *ए, मैटेरियल्स डेवलपमेंट फॅार लैंग्वेज टीचिंग,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

टॉमलिंसन, बी. 2001, '*मैटेरियल्स डेवलपमेंट*' कार्टर, आर. और नूनान, डी. (संपादकगण) में, *कैंब्रिज गाइड टू टीचिंग इंग्लिश टू स्पीकर्स ऑफ़ अदर लैंग्वेजेस,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

टॉमसन, ए. जे. और मार्टिनेट, ए. वी. 1991, *ए प्रैक्टिकल इंग्लिश ग्रामर,* ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

ट्रडगिल, पी. 1974, *दी सोशल डिफरेंसियेशन ऑफ़ इंग्लिश इन नॉरविच,* कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

ट्रूबेन, एच.टी. और बार्नेट-मिजराही, सी. 1979 (संपादक), *बाइलिंगुएल मल्टीकल्चरल एजुकेशन ऐंड द प्रोफ़ेशनल,* रौली, मास: न्यूबरी हाउस पब्लिकेशंस।

यू. एन. डी.पी. ए. 2004, *ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट,* नयी दिल्ली, ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

यूनेस्को, 1953, *दी यूज ऑफ़ वर्नाकुलर लैंग्वेज इन एजुकेशन,* पेरिस: यूनेस्को।

यूनेस्को, 2003, *एजुकेशन इन ए मल्टीलिंगुएल वर्ल्ड,* यूनेस्को एजुकेशन पोजिशन पेपर, पेरिस।

यूनेस्को, 2004, *एजुकेशन फॉर ऑल : दी क्वालिटी इंपरेटिव,* ई. एफ. ए. ग्लोबल मॉनिटरिंग रिपोर्ट, पेरिस।

अपशर, जे. 1968, "फोर एक्सपरिमेंट्स ऑन द रिलेशन बिटवीन फॉरेन लैंग्वेज टीचिंग एंड लर्निंग." *लैंग्वेज लर्निंग* 18:111-124

उर, पी. 1996, *ए कोर्स इन लैंग्वेज टीचिंग, कैंब्रिज:* कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

वैलेटी, रेबेका, एम. 1967, *मॉडर्न लैंग्वेज टेस्टिंग,* न्यूयॉर्क: हारकोर्ट, ब्रास एंड वर्ल्ड, इंक.।

वंद्योपाध्याय, पी. के. और आर. के. अग्निहोत्री 2000 (संपादकगण), *भाषा: बहुभाषिता और हिंदी,* दिल्ली: शिलालेख।

वान एल्स, टी. 1984, *एप्लॉयड लिंग्विस्टिक्स ऐंड द लर्निंग एंड टीचिंग ऑफ फॉरेन लैंग्वेजेस,* लंदन: एडवर्ड आर्नल्ड।

वर्मा, एम. के. 1998 (संपादक), *सोशियो लिंग्विस्टिक्स, लैंग्वेज ऐंड सोसाइटी.* नयी दिल्ली : सेज पब्लिकेशंस।

व्योगोत्सकी, एल. एस. 1978, *माइंड इन सोसायटी: दी डेवलपमेंट ऑफ़ हायर साइकोलॉजिकल प्रोसेस,* कैंब्रिज, मॉस: हार्वड यूनिवर्सिटी प्रेस।

वॉकर, एस. 1984, *लर्निंग थ्योरी ऐंड बिहेवियर मॉडिफिकेशन,* लंदन: मेथन।

वी, एल. 2000 (संपादक), *दी बाइलिंगुएल रीडर,* लंदन: रूटलेज।

वेयर, सी. और रॉबर्ट्स जे. 1994, *इवैल्यूएशन इन ई. एल. टी.,* ब्लैकवेल।

वेयर, सी. जे. 1990, *कम्युनिकेटिव लैंग्वेज टेस्टिंग,* न्यूजर्सी : प्रेंटिस हॉल रीजेंट।

वेसब्रॉड, सी. 2002, *एम्बलम्स ऑफ़ प्लुरलिज़्म: कल्चरल डिफरेंसेस एंड द स्टेट,* प्रिंसटन, न्यूजर्सी : प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।

वेस्ट, आर. 1999, *एसेसमेंट इन लैंग्वेज लर्निंग.* यूनिवर्सिटी ऑफ़ मैनचेस्टर डिस्टेंस लर्निंग प्रोग्राम-एम. ई. डी. इन ई.एल.टी.।

व्हिटले, डब्ल्यू. एच. 1971 (संपादक), *लैंग्वेज यूज एंड सोशल चेंज : प्रॉब्लम्स विद मल्टीलिंग्विएलिज़्म विद स्पेशल रेफरेंस टू इस्टर्न अफ्रीका,* लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

व्हिटनी, एन. 1987, 'एडीटोरियल' *ई. एल. टी.* 41.2: पृ. 81

विडोसन, एच. जी. 1984, *दी इंसेटिव वैल्यू ऑफ़ थ्योरी इन टीचर एजुकेशन, ई. एल. टी.* 38.2:86-90

विल्स, जे. 1981, *टीचिंग इंग्लिश थ्रू इंग्लिश,* लंदन: लांगमैन।

विल्स, जे. 1998, 'टॉस्क-बेस्ड लर्निंग, *इंग्लिश टीचिंग प्रोफेशनल 9*

विल्स, जे. और विल्स, डी. 1989, *दी कॉलिंस कॉबिल्ड इंग्लिश कोर्स, लेवल III,* बर्मिघंम: कॉलिंस कॉबिल्ड।

विल्स, जे. और विल्स डी. 1996, *चैलेंज एंड चेंज इन लैंग्वेज टीचिंग:* ऑक्सफोर्ड : हैनीमन।

विटजेंसटाइन, एल. 1998, *फिलॉस्फिकल रिमार्क्स,* ऑक्सफोर्ड: बेसिल ब्लैकवेल।

जमील, वी. 1985, *रेस्पोंडिंग टू स्टूडेंट राइटिंग, टी. ई. एस. ओ. एल. त्रैमासिक,* 19.1

इस वेबसाइट को जरूर देखें :

http//www.languageindia.com

कुछ पत्र-पत्रिकाएँ

- सेमिनार (अंक संख्या 493/2000 में कृष्ण कुमार, पद्मा एम. सारंगपाणि, रोहित धनकर, मोहम्मद तालिब, साधना सक्सेना, ए. आर. वैश्वी, शोभा सिन्हा, अरुणा रत्नम, गीता बी. नांबिसन के सहयोग के साथ पुन:अभिकल्पित पाठ्यचर्चा: नयी दिल्ली, भारत की एक संक्षिप्त और चुनिंदा संदर्भ ग्रंथ सूची।
- संदर्भ, एकलव्य (हिंदी), होशंगाबाद, भारत।
- विमर्श, दिगंतर (हिंदी) जयपुर , भारत।
- कंटेंपोरेरी एजुकेशन डायलॉग, बेंगलुरु, भारत।
- स्रोत, एकलव्य (हिंदी), भोपाल, भारत।
- इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ द्रविडियन लिंग्विस्टिक्स, तिरुवनंतपुरम, भारत।
- साउथ एशियन लैंग्वेज रिव्यू, नयी दिल्ली, भारत।
- इंडियन जर्नल ऑफ़ एप्लॉयड लिंग्विस्टिक्स, दिल्ली, भारत।
- इंडियन लिंग्विस्टिक्स, पुणे, भारत।
- बुनियादी शिक्षा (हिंदी), उदयपुर, भारत।
- इंटरनेशनल रिव्यू ऑफ़ एप्लॉयड लिंग्विस्टिक्स, न्यूयॉर्क, अमेरिका।
- लैंग्वेज लर्निंग, ऑक्सफोर्ड, इंग्लैंड।
- सेकंड लैंग्वेज, एक्वीजीशन रिसर्च, बेडफोर्डशायर, इंग्लैंड।
- लैंग्वेज, कोलंबिया, अमेरिका।
- लिंग्विस्टिक इंक्वायरी, न्यूयार्क, अमेरिका।
- लैंग्वेज इन सोसायटी, न्यूयार्क, अमेरिका।
- इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ द सोशियोलॉजी ऑफ़ लैंग्वेज, न्यूयार्क, अमेरिका।
- ई. एल. टी. जर्नल, ऑक्सफोर्ड, इंग्लैंड।
- मॉडर्न लैंग्वेज जर्नल, मैडिसन, अमेरिका।
- जर्नल ऑफ़ रीडिंग, न्यूयॉर्क, अमेरिका।
- चाइल्ड डेवलपमेंट, ऑक्सफोर्ड, इंग्लैंड।
- ब्रिटिश जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल स्टडीज, ऑक्सफोर्ड, इंग्लैंड।
- जर्नल ऑफ़ वर्बल लर्निंग एंड वर्बल बिहेवियर, न्यूयार्क, अमेरिका।
- कॉग्निशन, क्लेयर, आयरलैंड।
  ब्रिटिश जर्नल ऑफ़ सोशियोलॉजी ऑफ़ एजुकेशन, ऑक्सफोर्ड, इंग्लैंड।
- एप्लॉयड साइको-लिंग्विस्टिक्स, कैंब्रिज, इंग्लैंड।

परिशिष्ट II

वर्गीकृत ग्रंथसूची

बहुभाषिता और बहुभाषी शिक्षा

अग्निहोत्री, आर. के. (1992); बेकर, सी. (1988, 1993, 2001); बाउमैन, ज़ैड (2001); ब्रेख़्त, आर.डी. और इनगोल्ड, सी. डब्ल्यू. (1988); सेनन, जे. और जेनेसी, एफ. (2001); कोहन, ए. डी. (1975); क्राफोर्ड, जे. (1991); क्रहॉल, एन. (1992); कमिंस, जे. और डेनेसी, एम. (1990); कमिंस , जे. (1976, 1984, 2001); कमिंस, जे. और स्वेन, एम, (1986); एडवर्ड्स, वी. (1998); एडवर्ड्स, वी. और वॉकर, एस. (1995); फ्रीमैन, आर. (1998); गार्डनर, आर. सी. (1977); हकूता, के. (1986); हेग, के. और उनके सहयोगी (1995); काटसायटी, एल. (1983); खूबचंदानी, एल. एम. (1983); पंडित, पी. बी. (1969); पटनायक, डी.पी. (1981); शर्मा, पी. जी. और कुमार, एस. (1977); स्कटनब-कंगास, टी. और कमिंस जे. (1988); श्रीधर, के. के. (1989); श्रीवास्तव, आर.एन. (1988); टूबेन, एच.टी. और बार्नेट-मिजराही, सी. (1979); और वी, एल. (2000); बेयर (1986); देवकी (1990); मोहंती (1994); शर्मा और अन्नामलाई (2003); लाल (1986); राजश्री(1986); मिश्रा और दुआ (1980); दुआ(1986); दत्ता-बरुआ(1999)।

द्वितीय/विदेशी भाषाएँ सीखना

अग्निहोत्री, आर. के., खन्ना, ए. एल. और सचदेव, आई. (1998); अग्निहोत्री, आर. के., खन्ना ए. एल. (1994); अग्निहोत्री, आर. के., खन्ना; ए. एल. (1994); एंडरसन, आर. डब्ल्यू. (1981); बायलस्टॉक, ई. (1978); ब्राउन, डी. एच. (1980); कॉर्डर, पी. (1967); एलिस, आर. (1985); गार्डनर, आर. सी. (1988,1985); गार्डनर आर. सी. और लैंबर्ट, डब्ल्यू. ई. (1972); हॉरविट्ज, ई. के., हॉरविट्ज, एम. बी. और कोप, जे. (1986); क्राषेन, एस. डी. (1976,1981,1982,1985); मैकनॉमरा, जे. (1977); मैकलघलीन, बी. (1987); पपाकंसेटेंटीनियू, ए. (1988); रिचर्ड्स, जे. सी. (1978); वान एल्स, टी. (1984); व्योगोत्सकी, एल. एस. (1978); रदरफोर्ड, डब्ल्यू. (1987) और वॉकर, एस. (1984)।

द्वितीय/विदेशी भाषाएँ पढ़ाना

अग्निहोत्री, आर. के. (1994,1999); अग्निहोत्री, आर.के. (1988); अग्निहोत्री, आर. के., खन्ना, ए. एल. और मुखर्जी ए. (1982,1998); ऑलराइट, आर.एल.,(1981); एलेन और कैंपबैल (1972); बीमौंट, एम. (1996); ब्राउन, डी. एच. (1980); ब्रमफिट, सी. (1984,1980); ब्रमफिट, सी. जे. और जॉनसन, के. (1979); केनाले, एम. और स्वेन (1980); एज़, जे. (1989); एज़, जे. और रिचर्ड्स, के. (1993); गॉवर, आर., फिलिप्स, डी. और वाल्टर्स, एस. (1995); हारमर, जे. (1995); हॉपकिंस, डी. (1993); हाउस, एस. (1997); क्राउज, एम. ए. (1992); लार्सन-फ्रीमैन, डी. (1986); लिट्लवुड, डब्ल्यू. (1981); मालमाह-थॉमस, ए, (1987); मैकडोनाघ, जे. और शॉ, सी. (1993); मेडगाइज, पी. और मालडेरेज़, ए. (1966); नागराज, जी. (1996); नूनान,डी. (1988,1991); नटॉल, सी. (1996); रिचर्ड्स, जे. सी. (1990); रिचर्ड्स, जे. सी. और रोज़र्स, टी.एस. (1981); स्क्राइवनर, जे. (1994); स्टर्न, एच.एच. (1983); टेनर, आर.और ग्रीन सी. (1998); थोर्नबरी, एस. (1999); टॉमलीनसन, बी. (1988); उर, के. (1996); विल्स, जे. (1981); और विल्स, जे. और विल्स, डी. (1996)।

भाषा परीक्षण

एल्डरसन, जे.सी., कॉलफॉम, सी. और वाल,डी.(1995); एल्डरसन, जे. सी. और बरेटा, ए. (1992); बैकहम, एल. (1989); बैकहम, एल. एफ. और पॉमर, ए. एस.(1996); ब्राउन, जे. डी. (1996); कैरोल, बी. (1980), कोहेन,ए. (1980); डेविस, ए. (1990); हैरिस, डी. पी. (1969); हैरिसन, ए. (1983); हैनिंग, जी. (1987); ह्यूज, ए. (1989); मिलानोविक. एम. (1995); ओलर, जे. डब्ल्यू (जूनियर) (1979,1983); स्पोल्स्की, बी. (1978); बैलेटी, रिबेका, एम. (1967); वीयर,सी.जे. (1990); और वीयर, सी और रॉबर्ट्स, जे. (1994); सुबैया (2004); सुबैया (संपादन) 2005।

भाषा पाठ्यचर्या

बायरम,एम. (1997); नूनान, डी. (1980,1988); स्प्रोट, आर. (1984); बर्नस,ए. और हूड, एस. (1994); बर्टन, जे. और नूनान, डी. (1988–91); ऑलराइट, डी. और बैली, के. एम. (1991); ऑलसन,जे. (1980); स्टेनहाउस, एल. (1975); हुडा, एन. (1992); जॉनसन, आर. के. (1989); एप्पल, एम. (1990); व्हाइट, आर.(1988); केंडलिन, सी. एन. (1983) और मनबाई, जे. (1984); इटागी और उनके सहयोगी (1994)।

सामान्य भाषा विज्ञान

अचिंसन, जे. (1983); अकमाजियन, ए. और हैनी, एफ. डब्ल्यू. (1975); बैरी एम. (1975); ब्लूमफील्ड, एल. (1933); चॉम्स्की, एन. (1957,1959,1963,1964,1967,1968,1970,1980,1991,1995); चॉम्स्की, एन. और काट्ज, जे. (1975); क्लार्क, एच. एच. और क्लॉर्क, ई. वी. (1997); कूक, वी. जे. और न्यूसन,एम. (1996); डी. सौसुरे, एफ. (1916); फोडोर, जे. और काट्ज, जे. (1964); ग्रीनवर्ग, जी. एच. (1978); हैलीडे, एम.ए.के. (1973,1975); हडसन (1980); जेस्पर्सन, ओ, (1922); जूस, एम. (1957); काट्ज, जे. और पोस्टल, एम. पी. (1964); क्रेस, जी. (1976); लेनीबर्ग, ई. (1967); लायंस,जे. (1972,1977,1981); रेडफोर्ड, ए. (1990) और रॉबिंस, आर. एच. (1967,1989)।

बच्चों की शिक्षा और विकास

अग्निहोत्री, आर. के. (1992); अरोड़ा, जी. एल. (1995); एटकिंसन, एम. (1982); बेन. बी. सी. (1975); काजडेन, सी. (1981); कमिंस, जे. (1983बी.); एपस्टीन, एन. (1977); फ्रीमैन, आर. (1998); हैग, के. एवं उनके सहयोगी (1995); लिंडफोर्स, जे. डब्ल्यू. (1980); मोडियानो, एन. (1968); पटनायक, डी. पी. (1981); पॉलस्टोन, सी. (1988); रिवेरा, सी. (1984) स्वेन, एम. और वौंग फिलमौर, एल. (1984); टूबा, एच., गुथोरी, जी. पी. और औ के. एच.(1981) और व्योगोत्सकी एल. एस. (1962); नारायण (2004) श्यामला(1991), थिरूमलाई, और गायत्री (1991)।

भाषा सीखनेवाले

अग्निहोत्री, आर. के. (1979,1988); अग्निहोत्री, आर. के., खन्ना, ए. एल. (1982,1994,1995); अग्निहोत्री, आर. के., खन्ना, ए. एल. और मुखर्जी, ए. (1982,1983); अग्निहोत्री, आर.के., खन्ना ए. एल. और सचदेव, आई. (1998); चेरीशोकस, एन. ई. (1991); कार्डर, पी. (1967); एज जे. (1989); गार्डनर, आर. सी. (1985,1988); गार्डनर, आर. सी. और लैंबर्ट, डब्ल्यू, ई. (1972); हारविट्ज, ई.के., हारविट्ज, एम. बी. और कोप, जे.(1986); खन्ना, ए. एल. (1983); क्राषेन, एस. डी. (1976,1981,1982,1985); नूनान,डी. (1988)।

परिशिष्ट III

राज्य-वार 'शिक्षा में आदर्श भाषा' की तालिकाएँ

विद्यालय में भाषाओं की आदर्श तालिका : प. बंगाल

कक्षा	माध्यम	अनिवार्य विषय	ऐच्छिक विषय	शास्त्रीय	विदेशी
I	मातृभाषा	मातृभाषा	अंग्रेज़ी/क्षेत्रीय भाषा या अल्पसंख्यकों की भाषा	X	X
II	मातृभाषा	मातृभाषा	"	X	X
III	मातृभाषा	मातृभाषा	"	X	X
IV	मातृभाषा	मातृभाषा	"	X	X
V	मातृभाषा	मातृभाषा	"	X	X
VI	मातृभाषा	मातृभाषा, अंग्रेज़ी	क्षेत्रीय भाषा/शास्त्रीय भाषा/विदेशी	अनिवार्य नहीं	ऐच्छिक
VII	मातृभाषा	"	"	"	"
VIII	मातृभाषा	"	"	"	"
IX	मातृभाषा	"	"	"	"
X	मातृभाषा	"	"	"	"
XI	अंग्रेज़ी	"	"	"	"
XII	अंग्रेज़ी	"	"	"	"

विद्यालय में भाषाओं की आदर्श तलिका : राजस्थान

कक्षा	माध्यम	अनिवार्य विषय	ऐच्छिक विषय	शास्त्रीय	विदेशी
I	मातृभाषा	हिंदी	X	X	X
II	मातृभाषा	हिंदी	X	X	X
III	मातृभाषा	हिंदी	X	X	X
IV	मातृभाषा	हिंदी + अंग्रेज़ी	X	X	X
V	मातृभाषा	हिंदी + अंग्रेज़ी	X	X	X
VI	मातृभाषा	हिंदी + अंग्रेज़ी	X	संस्कृत	X
VII	मातृभाषा	हिंदी + अंग्रेज़ी	X	संस्कृत	X
VIII	मातृभाषा	हिंदी + अंग्रेज़ी	X	संस्कृत	X
IX	मातृभाषा	अंग्रेज़ी	हिंदी	हिंदी या संस्कृत	फ्रेंच/जर्मन
X	मातृभाषा	अंग्रेज़ी	हिंदी	हिंदी या संस्कृत	"
XI	अंग्रेज़ी	अंग्रेज़ी	हिंदी	X	"
XII	अंग्रेज़ी	अंग्रेज़ी	हिंदी	X	"

विद्यालय में भाषाओं की आदर्श तालिका : केरल

कक्षा	माध्यम	अनिवार्य विषय	ऐच्छिक विषय	शास्त्रीय	विदेशी
I	मातृभाषा	राज्य-स्तरीय भाषा (मलयालम)/ क्षेत्र-स्तरीय भाषा (तमिल, कन्नड़)	मुस्लिम विद्यार्थियों के लिए अरबी	X	X
II	मातृभाषा	"	"	X	X
III	मातृभाषा	मौखिक अंग्रेज़ी	"	X	X
IV	मातृभाषा	अंग्रेज़ी	"	X	X
V	मातृभाषा	राज्य-स्तरीय/क्षेत्र-स्तरीय + अंग्रेज़ी + हिंदी	एच्छिक शास्त्रीय भाषाएँ (अरबी, उर्दू, संस्कृत, अंग्रेज़ी)	X	X
VI	मातृभाषा	"	"	X	X
VII	मातृभाषा	"	"	X	X
VIII	मातृभाषा या अंग्रेज़ी	"	"	X	X
IX	"	"	"	X	X
X	"	"	"	X	X
XI	"	राज्य-स्तरीय/क्षेत्र-स्तरीय + अंग्रेज़ी	उप-ऐच्छिक : कोई भी अन्य भारतीय भाषा या विदेशी भाषा	X	X
XII	"	"	"	X	X

विद्यालय में भाषाओं की आदर्श तालिका : उत्तर प्रदेश

कक्षा	माध्यम	अनिवार्य विषय	ऐच्छिक विषय	शास्त्रीय	विदेशी
I	मातृभाषा	हिंदी और अंग्रेज़ी	X	X	X
II	"	"	X	X	X
III	"	"	X	X	X
IV	"	"	X	X	X
V	"	"	X	X	X
VI	हिंदी	अंग्रेज़ी	उर्दू	संस्कृत/अरबी	X
VII	"	"	"	"	X
VIII	"	"	"	"	X
IX	"	"	"	"	Ýp
X	"	"	"	"	"
XI	अंग्रेज़ी	"	X	X	X
XII	"	"	X	X	X

विद्यालय में भाषाओं की आदर्श तालिका : कर्नाटक

कक्षा	माध्यम	अनिवार्य विषय	ऐच्छिक विषय	शास्त्रीय	विदेशी
I	मातृभाषा	क्षेत्रीय भाषा	X	X	X
II	”	”	X	X	X
III	”	”	X	X	X
IV	”	”	X	X	X
V	क्षेत्रीय भाषा	अंग्रेज़ी	संस्कृत	X	X
VI	”	”	संस्कृत	X	X
VII	”	”	संस्कृत	X	X
VIII	अंग्रेज़ी	क्षेत्रीय भाषा	संस्कृत/हिंदी/ अन्य क्षेत्रीय भाषा	X	X
IX	”	”	”	X	X
X	”	”	”	X	X
XI	”	क्षेत्रीय भाषा/हिंदी	”	X	X
XII	”	”	”	X	X

विद्यालय में भाषाओं की आदर्श तालिका : उत्तर भारत

कक्षा	माध्यम	अनिवार्य विषय	ऐच्छिक विषय	शास्त्रीय	विदेशी
I	मातृभाषा	मातृभाषा और अंग्रेज़ी (मौखिक दूसरी तक)	X	X	X
II	मातृभाषा	”	X	X	X
III	मातृभाषा	”	X	X	X
IV	मातृभाषा	”	X	X	X
V	मातृभाषा	”	X	X	X
VI	क्षेत्रीय/राष्ट्रीय भाषा	हिंदी+अंग्रेज़ी+अन्य भाषा (क्षेत्रीय को छोड़कर)	संस्कृत (एम. आई. एल. के रूप में) (ऐच्छिक)	X	
VII	X	''	”	''	''
VIII	”	”	”	X	X
IX	”	क्षेत्रीय भाषा + अंग्रेज़ी	”	X	X
X	”	”	”	संस्कृत, तमिल, लैटिन (अनिवार्य)	X
XI	”	क्षेत्रीय भाषा के सिवा dkb Hkh Hkk"kk	अंग्रेज़ी (ऐच्छिक)	संस्कृत (ऐच्छिक)	ऐच्छिक
XII	”	”	”	”	”

राष्ट्रीय फोकस समूह

स्कूली पाठ्यचर्या में भारतीय भाषाओं के लिए प्रस्तावित व्यवस्था

कक्षा	माध्यम	अनिवार्य विषय	ऐच्छिक विषय	शास्त्रीय	विदेशी
I	मातृभाषाएँ	मातृभाषाएँ/क्षेत्रीय/ राज्य-स्तरीय भाषाएँ			
II	"	"			
III	"	"			
IV	"	"			
V	"	" (प्राथमिक शिक्षा के दौरान कभी भी अंग्रेज़ी को लागू किया जा सकता है)			
VI	मातृभाषाएँ/ क्षेत्रीय भाषाएँ/ राज्य भाषाएँ	1. मातृभाषाएँ/ क्षेत्रीय भाषाएँ राज्य-स्तरीय भाषाएँ 2. हिंदी (प्रथम स्तर पर नहीं पढ़ाई गई हो) 3. अंग्रेज़ी	आधुनिक भारतीय भाषा जिसमें संस्कृत भी शामिल		
VII	"	"	"		
VIII	"	"	"		
IX	मातृभाषाएँ/क्षेत्रीय/ राज्य-स्तरीय भाषाएँ/ हिंदी/अंग्रेज़ी	"		संस्कृत/अरबी/ फ़ारसी/तमिल/ लैटिन	
X	"	"	"	"	
XI	"	कोई भी एक भाषा-मातृभाषा/क्षेत्रीय/ राज्य स्तरीय/ हिंदी/अंग्रेज़ी		"	कोई भी विदेशी भाषा
XII	"			"	

- **मातृभाषा**- मातृभाषा से हमारा मतलब है वे भाषाएँ जो घर में बोली जाती हैं, पड़ोस में, साथियों के साथ और सगे-संबंधियों के बीच बोली जाती हैं।
- **क्षेत्रीय भाषाएँ**- वे भाषाएँ जो प्रत्येक राज्य के विभिन्न भागों में बोली जाती हैं, भले ही उन्हें राज्य द्वारा मान्यता दी गई हो या नहीं।
- **राज्य भाषा**- राज्य भाषा/भाषाएँ जिनमें शामिल हैं राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त भाषाएँ।
- अलग-अलग राज्यों पर अंग्रेजी भाषा में उत्तीर्ण होने के मानक भिन्न हो सकते हैं।

परिशिष्ट IV

राष्ट्रीय फोकस समूह की बैठक के दौरान प्राप्त सम्मतियाँ

डॉ. एस. राधाकृष्णन्

कई विचारकों का मत है कि आज कई संस्कृतियाँ विलुप्ति के कगार पर खड़ी हैं या विलुप्त हो रही हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कई जीव-जंतु। सांस्कृतिक विविधता के कई सूचक हैं जिसमें धर्म भी एक है, लेकिन विश्व की संस्कृतियों की स्थिति को समझने का सर्वश्रेष्ठ सूचक उसकी भाषा की स्थिति होती है। कुछ भाषाएँ विस्तार पा रही हैं। अंग्रेज़ी का तो विज्ञान, वाणिज्य, राजनीति और लोकप्रिय संस्कृति की जनभाषा (लिंगुआ फ्रैंका) के रूप में विस्फोट हुआ है। बहुत सारी दूसरी भाषाएँ नष्ट हो रही हैं। येल विश्वविद्यालय के "इनडैंजर्ड लैंग्वेज फंड के डगलस एच. व्हालेन के अनुसार, आज के दौर में बोली जाने वाली लगभग 6,000 भाषाओं में से आधी से ज़्यादा भाषाएँ आने वाली शताब्दी में विलुप्त हो जाएँगी।" इनमें से लगभग आधी भाषाओं को बोलने वालों की संख्या 10,000 से कम है और एक चौथाई भाषाएँ 1000 से कम लोगों द्वारा प्रयुक्त हो रही हैं। इसका कारण कई लोग **भूमंडलीकरण** को मानते हैं जिसके द्वारा संस्कृतियों की एकरूपता बढ़ती जा रही है और इनको दूरसंचार तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था से ईंधन मिल रहा है।

भारत इससे अलग नहीं है। भारतीय भाषाओं का महत्त्व और इससे जुड़ी समृद्ध संस्कृति खत्म होती जा रही है। इसे रोका जाना चाहिए भारतीय भाषाओं को पहली भाषा के रूप में पढ़ाकर। भारत ने हमें सिखाया है कि माँ और मातृभूमि दोनों ही स्वर्ग से बढ़कर होते हैं। मैं यहाँ एक अमेरिकी दार्शनिक विल डूराँ का एक कथन दे रहा हूँ। *"भारत हमारी नस्ल की जन्मभूमि थी, और संस्कृत यूरोप की भाषाओं की माँ, वह हमारी दर्शन की माँ थी; अरबों के माध्यम से गणित की माँ, बुद्ध के माध्यम से ईसाई धर्म में दिए गए आदर्शों की माँ, ग्रामीण समुदाय के माध्यम से स्व-शासन और जनतंत्र की माँ।"*

एक बच्चा अपने आरंभिक वर्षों में दो या तीन भाषाएँ आसानी से सीख सकता है। जब वह स्वभावत: बिना किसी प्रयास के मातृभाषा सीख रहा होता है, तभी से उसमें अंग्रेज़ी सुनने और बोलने के कौशलों का विकास करते हुए अंग्रेज़ी पढ़ाना शुरू कर दिया जाना चाहिए। एक बार बच्चा इन दोनों में माहिर हो जाए तब उसे उपलब्ध अच्छे साहित्य जिस तक उसकी पहुँच हो, के माध्यम से धीरे-धीरे पढ़ना और लिखना सिखाना चाहिए।

मुझे हेलन केलर की याद आती है । कैसे उसकी चमत्कारी शिक्षिका सुलिवन मैसी ने मस्तिष्क से बहुत कमज़ोर केलर को एक ज़िम्मेदार मनुष्य बना दिया और उसके मन-मस्तिष्क को शब्दों और वस्तुओं के बीच तालमेल करना सिखाते हुए जागृत किया। यह तालमेल करना सिखाना केलर जैसे बच्चे जिसमें सीखने की इंद्रियाँ नहीं थीं, के लिए बहुत कठिन था। इतना ही नहीं आसपास के जगत का अवलोकन करना सिखाते हुए और दर्शन इतिहास, साहित्य और अर्थशास्त्र की फ्रेंच, जर्मन, लैटिन, तथा ग्रीक भाषा में लिखी किताबों को पढ़कर सुनाते हुए महान व्यक्तियों के महान विचारों और बड़ी उपलब्धियों से अवगत कराते हुए उस शिक्षिका ने केलर को बुद्धमति बना दिया। उसने उन सभी भाषाओं की खूबियाँ केलर को सिखाई जिन्हें वह जानती थी। इस तरह केलर ने विश्व की समृद्ध धरोहर प्राप्त की और **विश्व नागरिक** बनी।

कई दशकों के शोधों से ज्ञात हुआ है कि किसी बच्चे के लिए पढ़ने में मज़ा आना और अच्छी तरह पढ़ना सीख लेना स्कूल में बच्चे की सफलता के बड़े कारक हैं। अच्छे पाठक महान विद्यार्थी बनते हैं। उपलब्धिपरक जाँचों में ऐसे बच्चे हरेक स्तर पर अच्छे अंक लाते हैं। यहाँ तक कि गणित और विज्ञान में भी। अच्छे पढ़ाकू का शब्दकोश

भी अच्छा-ख़ासा होता है। एक अध्ययन से पता चला है कि जब शिक्षक जटिल भाषा बोलते हैं, कम उम्र के बच्चे खुद ही ज़्यादा जटिल वाक्य बनाना सीख जाते हैं। ***कक्षा तीसरी के बाद एक बच्चे को 3000 नये शब्द प्रति वर्ष के हिसाब से सीखने की ज़रूरत होती है, यानी लगभग आठ नये शब्द प्रतिदिन। और एक शब्द को अपना बनाने के लिए उसे कम से कम चार बार देखना/सीखना पड़ता है।***

ज़्यादा से ज़्यादा कहानियाँ, कविताएँ, जीवनियाँ, आत्मकथाएँ, नाटक इत्यादि पढ़ना स्कूली शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए।

अच्छे पढ़ने वाले ज़ल्दी शुरुआत करते हैं। कक्षा एक पठन के अंक विद्यालय की अन्तिम साल की सफलता के मुख्य संकेतक हैं। कहने का मतलब यह है कि आरंभिक अवस्था में जो कुछ भी होता है उसका असर सीखने के स्तर पर अंत तक देखा जा सकता है।

पढ़ना सीखना केवल अकादमिक उपलब्धि के लिए नहीं है। पढ़ना आनंद की अनुभूति कराता है। "बच्चे किताबों में दोस्त, सलाहकार और शांति पा सकते हैं। पढ़ना बच्चे को वे जादुई क्षण दे सकता है जिनमें वह लिखे हुए शब्दों का शांत संगीत सुन सके और उनसे भी कहीं ज्यादा।"

संक्षेप में :

क) हमें जरूरत है भारतीय भाषाओं की हमारी संस्कृति जीवंत रखने के लिए।

ख) हमें जरूरत है अंग्रेज़ी भाषा की बच्चों में वैज्ञानिक-बोध विकसित करने के लिए।

ग) प्राथमिक स्कूलों में दूसरी कक्षा तक सुनने की कुशलता (श्रवण कौशल) को विकसित करने पर ज़ोर डालना चाहिए और उसके बाद से तीसरी कक्षा में पढ़ने पर।

घ) कम से कम आठ नये शब्द प्रतिदिन के हिसाब से शब्द-क्षमता विकसित करना सुनिश्चित करें।

ङ) प्राथमिक स्तर के अनुकूल अच्छी किताबों से भरा पुस्तकालय।

स्रोत : नेशनल ज्योग्राफ़िक, रीडर्स डाइजेस्ट

एच. के. दीवान

प्रिय प्रो. अग्निहोत्री,

भारतीय भाषाओं के शिक्षण के संदर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण है कि हम व्यापक सामान्य रणनीतियों पर विचार करें। बात किसी भी भाषा की हो, कक्षा में शिक्षक और बच्चे से संबंधित मुद्दे लगभग सभी भाषाओं में एक से हैं। पाठ्यपुस्तकों और स्कूल की भाषा से बच्चे की भाषा का कोई लेना-देना नहीं होता है। इनमें कभी कम तो कभी बहुत ज़्यादा अंतर पाया जाता है। किसी भी प्राथमिक विद्यालय में किसी भी कक्षा के सारे बच्चे एक ही भाषा के नहीं होते। बच्चों की भाषा में जो अंतर होते हैं वह महज एक ही भाषा के थोड़े से फेरबदल लिए हुए अलग-अलग रूप नहीं होते, बल्कि निहायत ही अलग-अलग पृष्ठभूमि लिए होते हैं। इसलिए जब हम यह कहते हैं कि मातृभाषा में पढ़ाई होनी चाहिए तो इन बातों का खयाल करते हुए इसे ज़्यादा स्पष्ट करना चाहिए।

भारतीय भाषाओं के शिक्षण के मामले में शुद्धता व जड़ता की समस्या आड़े आती है। एक तरफ़ बोली जाने वाली भाषा है जो ज़्यादा लचीली है, जीवंत है जबकि दूसरी तरफ़ पाठ्यपुस्तक व व्याकरण जुड़ जाते हैं। स्कूल में भाषा की इस शुद्धता को बनाए रखने का प्रयास किया जाता है, भले ही ऐसे में बच्चे की रचनात्मकता व आत्मविश्वास को दबाना पड़े। स्कूलों के मामले में इस तथ्य को स्वीकार करना होगा, और बच्चे की भाषा को सम्मान देना होगा – भले ही यह भाषा गलतियों व अशुद्धता से भरी हुई हो।

भारत में भाषा-शिक्षण, पढ़ने की क्षमता को विकसित करने की ज़रूरत को नहीं समझता है। यह बच्चे को केवल 'डिकोड' करना सिखाता है और 'डिकोडिंग' को ही पढ़ना समझने का भ्रम पालता है और इस भ्रम को फैलाता भी है। जबकि पढ़ना पाठ के साथ संवाद करना है, अपने अनुभवों व सैद्धांतिक संरचना के साँचे में पाठ को ढालना है। अकसर इस बात को भी नज़रअंदाज़ किया जाता है कि पढ़ने का अर्थ है धारणाओं को गढ़ना और साथ ही विचारों को आपस में जोड़ने की क्षमता को विकसित करना और उन्हें अपनी स्मृति में रखना। इस बात को भी नज़रअंदाज़ किया जाता है कि भाषा शिक्षण वर्णमाला पहचान, शब्द व वाक्य भर नहीं बल्कि कुछ और भी हैं। भाषा-शिक्षण में बतौर सबक जो कुछ बनाने के लिए दिया जाता है उसका उद्देश्य होता है बच्चे उनका जवाब ऐसा दें जो शिक्षक के अनुसार सही हो यानी प्रत्येक कहानी, कविता या अन्य रचना-खंड को एक ही तरीके से समझने व व्याख्यायित करने का दबाव बच्चों पर डाला जाता है। पढ़ना, लेखक द्वारा लिखे गए के अर्थ को समझना तो है ही साथ ही दूसरों के मत से भिन्न नज़रिया अपनाना और किताब की अपनी निजी समझ विकसित करना भी है, इसे स्कूली भाषा-शिक्षण में तरजीह नहीं दी जाती।

यह भी ध्यान देने लायक बात है कि दूसरे विषय यह मानने को तैयार ही नहीं होते कि वे भी भाषा पर निर्भर हैं और इन विषयों की अच्छी समझ के लिए ज़रूरी है कि बच्चे भाषा-दक्षता प्राप्त करें। परिणामत: एक भी ऐसा सबक नहीं दिया जाता जिससे विद्यार्थी रचनात्मक स्तर पर जूझें, उसमें निहित तर्क को समझें और अपना तार्किक नज़रिया विकसित कर सकें।

कुछ छोटे प्रयोगात्मक कार्यक्रमों को छोड़ दिया जाए, तो हम पाते हैं कि बच्चे को पाठ्यपुस्तक पढ़ने को प्रेरित नहीं किया जाता और साथ ही पर्याप्त सुविधा या सामग्री भी प्रदान नहीं की जाती, जिससे बच्चा पुस्तक को ज़्यादा गंभीरता और ज़्यादा आत्मविश्वास के साथ पढ़ने को अग्रसर हो।

उर्दू विशेषकर इसकी लिपि तथा परसो-अरेबिक शाब्दिक कोश और संस्कृत के मामले में उपरोक्त बातें महत्त्वपूर्ण हैं। हो सकता है इसका कारण अधिकांशत: इन भाषाओं का दिन-प्रतिदिन ज़्यादा इस्तेमाल न होना। जो भी हो परिणाम यही है कि इनकी पाठ्यपुस्तकें, ख़ासकर संस्कृत की काफ़ी पुरानी हैं साथ ही यथार्थ एवं बच्चे की अभिरुचि से कोसों

दूर। कक्षाओं में दैनंदिन घटनाओं पर बातचीत करने या यूँ ही साधारण वार्तालाप करने में संस्कृत का प्रयोग नहीं होता, क्योंकि खुद शिक्षक भी संस्कृत नहीं समझते। संस्कृत की कोई भी पुस्तक शिक्षक ठीक से नहीं पढ़ सकता। इसलिए रटना और रटाना ही मुख्य साधन बना हुआ है, इसमें कोई अचरज नहीं होना चाहिए। यदि हम चाहते हैं कि संस्कृत शिक्षण जारी रहे तो हमें एक ऐसा कार्यक्रम विकसित करना होगा, जिससे संस्कृत बातचीत के स्तर तक लाई जा सके और बातचीत की संस्कृत एक सोचा-समझा सिद्धांत बन जाए। यह वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम उस पाठ्यसामग्री का प्रयोग नहीं कर पाते हैं जो आधुनिक संस्कृत लेखकों द्वारा लिखी गयी है।

डॉ. एच. के. दीवान
विद्या भवन सोसाइटी
उदयपुर

रिमली भट्टाचार्य

18 फरवरी 2005

प्यारे साथियो,

निम्नलिखित टिप्पणी कई भारतीय भाषाओं और साहित्य के साथ-साथ रूसी, चीनी (मैनडेरिन) और फ्रेंच भाषा और साहित्य के साथ किए गए मेरे प्रयोगों व अनुभवों पर आधारित है। एक विद्यार्थी, शिक्षक, अनुवादक और प्राथमिक स्कूल के लिए पाठ्यपुस्तक लिखने और पठन-पाठन सामग्री (टी. एल.एम.) को बनाने से लेकर भारत व भारत के बाहर विभिन्न कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ाने की वज़ह से मुझे लगा कि मैं इस आधार पत्र के केंद्रीय उद्देश्य में कुछ योगदान दे सकती हूँ। मैंने भाषा-योजनाओं व उनके प्रभाव आदि पर अध्ययन नहीं किया है, लेकिन जिन्होंने ऐसा किया है, वे इस टिप्पणी की व्यावहारिकता पर सोच सकते हैं।

- पूरे देश में किसी यूनिफॉर्म भाषा-योजना को लागू करना न तो संभव है और न ही ज़रूरी।
- हममें से अधिकांश के लिए बहुभाषिकता वास्तविकता है, इसलिए इसका जितना सकारात्मक उपयोग हो सकता है-वह किया जाए। पाठ्यक्रम, टी.एल.एम. के निर्माण से लेकर कक्षा में संवाद द्वारा इसे परिपोषित किया जाना चाहिए।
- शिक्षा-व्यवस्था के भीतर और उनके बीच, जो शैक्षणिक-योजनाओं को बनाते हैं और कार्यान्वित करते हैं, भाषा की समझ व इसके प्रति संवेदनशीलता का अभाव है। इसलिए सर्वप्रथम यह ज़रूरी है कि भाषा के विभिन्न पहलुओं, मसलन इसकी ध्वनि, टोन, सूक्ष्मताओं, दृश्य-प्रदर्श आयामों, विशिष्ट सांस्कृतिक रस्मों और दैनंदिन व्यवहार के प्रति हम खुद को जागरूक करें।
- सबसे ज़्यादा ज़ोर प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों को इसके प्रति सचेत व गंभीर रुख अपनाने की ओर उन्मुख करने पर देना चाहिए। मैं प्रशिक्षण शब्द का इस्तेमाल जानबूझकर नहीं कर रही हूँ, कारण आज अधिकांश शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम शिक्षकों/होने वाले शिक्षकों में खतरनाक ढंग से 'एंटी-लर्निंग' रुख पैदा कर रहे हैं।
- औपचारिक शिक्षा में आरंभिक वर्षों में बच्चों को शुरू करने के लिए किसी एक भाषा (ज़रूरी नहीं कि मातृभाषा ही हो, लेकिन प्राथमिकता इसे ही देनी चाहिए) में गहरे उतार देने की ज़रूरत है । द्वितीय भाषा या दूसरे भाषा से भी अभी से परिचय कराया जा सकता है । आरंभिक वर्षों में बच्चा दोनों भाषाओं और लिपि में रुचि ले और उसे थोड़ी-सी भी परेशानी नहीं हो, इसका खयाल रखना ज़रूरी है । इन दिनों बच्चे की भाषा तालाब की तरह होती है, जिसमें वह खेलना, तैरना, भीगना सीखे। इसलिए फोकस कितनी गहराई तक ले जाना है, उस पर होना चाहिए । मूल्यांकन एवं टेस्ट भी हों परन्तु ऐसे जो बच्चे के लिए वह हौवा या तनाव पैदा करने वाले न बन जाएँ।
- आज जिस तरह से वैश्विक अर्थव्यवस्था फैल रही है, उसमें अंग्रेज़ी पढ़ाने और सीखने की ज़रूरत बढ़ती जा रही है। लेकिन उससे भी अहम व गंभीर मसला है बच्चे का कब और कैसे अंग्रेज़ी से परिचय कराना चाहिए। इसे औपचारिक रूप से विद्यालय में पहले साल से ही शुरू किया जा सकता है (ध्वनि व लिपि दोनों स्तरों पर), लेकिन यह तभी संभव है जब ठीक से तैयारी करके इसे सावधानीपूर्वक कार्यान्वित किया जाए।
- प्राथमिक स्कूल में पहले साल भाषाएँ ही सब कुछ हैं, फोकस समूह इसे रिपोर्ट में एक अलग-हिस्से में स्पष्ट व विस्तार दे सकता है। इसमें देश के विभिन्न भागों में दो या चार तरह के परिदृश्यों को भी शामिल किया जाए।
- हिंदी तीसरे या चौथे साल ऐच्छिक विषय के रूप में शुरू की जा सकती है।
- नीति पत्र को इतना लचीला होना चाहिए कि वह अल्पसंख्यक समुदायों और हाशिए पर रहने वाले समूहों की अपेक्षाओं को समाहित कर सके। इसी समय इसे यह भी ध्यान रखना है कि यह ऐसा न बन पाए कि थोड़े समय के राजनीतिक लाभों के लिए अवसर देने लगे और जिसके कारण धर्म, जाति और अन्य स्वार्थी समूहों के मुद्दों

को गति मिले बिना यह ध्यान में लाए कि अन्तर्निहित उद्देश्यों को साकार करने के लिए जरूरी संभव सुविधाएँ और संसाधनों की उपलब्धता है कि नहीं। इन परिस्थितियों में ऐसा होगा कि बिना किसी लंबे समय की प्रतिबद्धता के बच्चों पर बोझ डाला जाएगा और इसकी निर्भरता प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित शिक्षकों पर रहेगी जो वास्तव में शिक्षण करते हैं।

मैं दो उदाहरण देती हूँ :

1. 'अलाचिकी' लिपि को पश्चिम बंगाल में आदिवासी बच्चों को सिखाया जाना शुरू किया गया । उद्‌देश्य था, उनकी अपनी लिपि देना, लेकिन कलकत्ता और बांकुरा ज़िले में जब मैंने पाठ्यपुस्तकों का सर्वेक्षण किया (1996), तो पाया कि एक भी पाठ्यपुस्तक इस लिपि को सिखाने या सीखने के लिए उपलब्ध नहीं थी और न ही ऐसा कोई शिक्षक मिला जो बच्चों को इस लिपि में पढ़ा रहा हो । आदिवासी बच्चे बंगला लिपि से जूझ रहे थे, वास्तव में उन्हें इस लिपि से नहीं जूझना था। इस तरह वे ऐसी ज़मीन पर थे जहाँ कोई भाषा ही नहीं थी *(दे वर इन ए नो लैंग्वेज लैंड)*
2. असम की पाठ्यपुस्तकों में बोडो सिखाने वाली अभ्यास-पाठ्यपुस्तकों में किसी एक ही कवि की घटिया कविताएँ थीं, जबकि कार्यशाला (गुवाहाटी 2001-02) के दौरान यह पता चला कि बोडो में लिखी कविताओं का समृद्ध भंडार है। दरअसल उक्त लेखक जिसकी कविताएँ पाठ्यपुस्तक में थीं, पाठ्यपुस्तक समिति में प्रभाव रखने वाला सदस्य था।

इन दोनों मामलों में पाते हैं कि लिपियाँ/भाषाएँ सरकारी स्तर पर मान्य थीं और स्कूल जाने वाले बच्चे के लिए उपलब्ध भाषाओं में शामिल की थीं। परंतु इसके क्रियान्वयन के लिए बहुत ही कम रुचि ली गई या यूँ कहें प्रयास ही नहीं किए गए। अंततः भाषा के लिए कोई आदर भाव नहीं रहा दोनों तरफ़ चाहे राजनीतिक स्तर पर जहाँ लोग इस बात से सहमत थे कि भाषा/लिपि को शामिल करना है या उन लोगों के स्तर पर जो वास्तव में नीति को कार्यरूप में बदलना चाहते थे। दोनों ही स्थितियों में बच्चे को किसी प्रकार का समृद्ध अनुभव नहीं मिलेगा उसकी भाषा पर पकड़ नहीं हो पाएगी। इन स्थितियों में भाषा को अधिकारिक पहचान देना यह सुनिश्चित करना है कि बच्चे की अपनी भाषा में उपलब्ध संसाधनों तक पहुँच न हो। नीति पत्र को इतना लचीला होना चाहिए कि इसमें हाशिए पर चले गए समूहों या अल्पसंख्यक समुदायों की अपेक्षाओं को शामिल किया जाये। साथ ही इसे इतना भी मुक्त नहीं होना चाहिए कि इसका इस्तेमाल थोड़े समय के राजनीतिक लाभ के लिए हो जो धर्म, जाति और दूसरे समूहों के मुद्दों को हवा दे, इस बात पर ध्यान दिए बिना कि संभव ढाँचा तथा आवश्यक संसाधन आवश्यक हैं। इसके उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इस तरह के मामलों में परिणाम होगा बिना किसी दूरगामी प्रतिबद्धता के बच्चों पर बोझ डालना।

ये कुछ प्राथमिक अवलोकन हैं। मैं किसी भी प्रकार के स्पष्टीकरण या योगदान का अवसर पाऊँ, तो खुशी होगी। भाषा मनुष्य जीवन का एक अभिन्न हिस्सा है, और मैं उम्मीद करती हूँ कि, यह 'पैशन' इस समूह के अंतिम रिपोर्ट में बहुआयामी परिप्रेक्ष्यों में अभिव्यक्त होगा और 21वीं सदी में भारतीय भाषाओं के शिक्षण के लिए किसी भी प्रकार के यांत्रिक दृष्टिकोण को पनपने का मौका नहीं देगा।

रिमली भट्टाचार्य
अंग्रेज़ी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007

अंजली नोरोहना

गैर सरकारी संगठनों की भूमिका

भाषा शिक्षा का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अवयव होता है। सही अर्थों में कहें तो यह शिक्षा की आधार स्तंभ होती है क्योंकि ज्ञान को समझने एवं उसे अभिव्यक्त करने का प्राथमिक माध्यम यही है। यद्यपि सरकार की नीति रही हो कि शिक्षा बच्चे को मातृभाषा में ही दी जाए, फिर भी एक बड़े भाग को ख़ासकर वंचित लोगों तक इसे अमली जामा नहीं पहनाया जा सका। जहाँ माध्यम के रूप में मातृभाषा अपनाई भी जाती है वहाँ भी पाठ्य एवं पाठ्य वस्तु का संदर्भ प्रायः शहरी, उच्च जाति, मध्य वर्ग और पुरुष का ही होता है। गैर सरकारी संगठन जो ज़मीनी या ज़मीन से जुड़े काम करते हैं इस मुद्दे को उठाते रहे हैं तथा भाषा की अजनबीयत को कम करने के कई तरीके विकसित किए हैं। ख़ासकर ग्रामीण बच्चों को उनसे जुड़े संदर्भ के अनुसार शिक्षा देकर। इस तरह के अभियानों से हम सार्वजनिक शिक्षा को और अधिक उपयोगी बनाने की ओर बढ़ सकते हैं। गैर सरकारी संगठनों एवं सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था के बीच आपसी सहयोग के कुछ अच्छे परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

कुछ उदाहरण :

लद्दाख में भाषा एवं माध्यम का मुद्दा : भाषा की जागरूकता बढ़ाने के लिए सेकमोल (स्टूडैंट एजुकेशनल एंड कल्चरल मूवमेंट ऑफ़ लद्दाख) का प्रयास : जम्मू और कश्मीर के लद्दाख ज़िले में एक विचित्र स्थिति पैदा हो गई थी। 10 साल पहले वहाँ पहली से लेकर 9वीं कक्षा तक की सभी पाठ्यपुस्तकें उर्दू में थीं जबकि 10वीं कक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी था।

अचानक से इस बदलाव के कारण 10वीं कक्षा में विद्यार्थियों का प्रदर्शन अत्यंत खराब था (5% से भी कम)। लद्दाख में एक बड़ी जनसंख्या बौद्धों की है तथा मुस्लिम आबादी भी अच्छी संख्या में है। सभी लद्दाखी (बौद्ध एवं मुस्लिम) लद्दाखी भाषा बोलते हैं। लद्दाखी लिपि बौद्ध समुदाय के साथ संबंधित बताई गई और वहाँ की सरकार ने इसे एक सांप्रदायिक भाषा की तरह लिया। इसलिए उर्दू (राज्य भाषा) की जगह लद्दाखी भाषा (सांप्रदायिक भाषा) का प्रयोग रैडिकल व अलगाववादी कदम के रूप में लिया गया। साथ ही लद्दाखियों में भी लद्दाखी भाषा के प्रति सम्मान न के बराबर था। अंग्रेज़ी भाषा के प्रति ज़्यादा उत्साह था क्योंकि वे इस भाषा को सामाजिक गतिशीलता की भाषा मानते थे। इन तमाम राजनीतिक एवं सामाजिक दिक्कतों को देखते हुए 'सेकमोल' ने यह निर्णय लिया कि कक्षा एक से ही पढ़ाई का माध्यम अंग्रेज़ी हो, इसके लिए एक जन आंदोलन शुरू किया, ताकि बच्चे 10वीं कक्षा में अचानक अंग्रेज़ी माध्यम से जुड़कर परेशानी न झेलें। इस पहलकदमी ने सकारात्मक परिणाम सामने लाए। कक्षा 10 की परीक्षा के लिए उर्दू माध्यम लागू किया गया। हालाँकि इसे एक पश्चगामी कदम के रूप में देखा गया। प्रारंभिक कक्षाओं और बोर्ड परीक्षाओं के माध्यम के बीच निरंतरता का बहुत ही जबरदस्त प्रभाव 10वीं के नतीजों पर पड़ा। कुछ ही वर्षों में 10वीं के नतीजे का स्केल 5 प्रतिशत तेज़ी से ऊपर उठकर 40 प्रतिशत तक पहुँच गया।

इसके साथ ही 'सेकमोल' लद्दाखी भाषा के मानकीकरण की दिशा में भी प्रयास कर रहा है। इसके लिए वे लद्दाखी लिपि में एक अखबार रेवाई ओजर (Rewai Odzer) और एक पत्रिका मेलांग (Melong) निकालते हैं । साथ ही इसने बच्चों की कहानियों को दोनों ही भाषाओं अंगेज़ी और लद्दाखी में सामने लाया है। इसके अलावा यह प्राथमिक स्तर के पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तकों एवं भाषा के विकास से भी जुड़ा हुआ है । यद्यपि ये पाठ्यपुस्तकें अंग्रेज़ी माध्यम में है लेकिन लद्दाखी भाषा की झलकियों के साथ। इनकी योजना है कि अध्यापकों के लिए इनका लद्दाखी संस्करण भी निकाला जाए। इस तरह जब धीरे-धीरे स्थानीय लद्दाखी भाषा में चीजें छपकर आने लगेंगी, तब लद्दाखी

भाषा में पाठ्यपुस्तकों का आना संभव हो सकेगा । इसके समांतर ही 'सेकमोल', मातृभाषा की आवश्यकता के प्रति राज्य एवं स्थानीय लोगों को जागरूक करने के लिए आंदोलन भी चला रहा है।

लद्दाखी भाषा के प्रति नागरिक जागरूकता के कारण आज वहाँ राजनीतिक नेता भी लद्दाखी भाषा को आने वाले कुछ वर्षों में प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाने की बात करने लगे हैं। 'सेकमोल' भाषा को लेकर निम्न तरह से सोच रहा है:

पूर्व-प्राथमिक स्तर पर सभी विषयों के लिए केवल लद्दाखी भाषा का इस्तेमाल किया जाए।

(क) कक्षा एक एवं दो में सभी विषय लद्दाखी भाषा में हों, लेकिन अंग्रेज़ी को लागू किया जा सकता है।

(ख) कक्षा तीन में सभी विषय लद्दाखी भाषा में हो, लेकिन गणित अंग्रेज़ी भाषा में।

(ग) कक्षा चार में विज्ञान अंग्रेज़ी में शुरू हो, बाकी लद्दाखी में ही रहे।

(घ) कक्षा पाँच में सामाजिक विज्ञान भी अंग्रेज़ी में पढ़ाया जाए।

(ङ) प्राथमिक स्तर के बाद सभी विषय अंग्रेज़ी में तथा लद्दाखी भाषा एक विषय के रूप में ज़ारी रहे। 'सेकमोल' का विश्वास है कि इस तरीके से पढ़ाई होने से बच्चा मातृभाषा में चीज़ों को उस समय आसानी से सीख सकता है जब उसको इसकी सबसे ज़्यादा ज़रूरत है तथा धीरे-धीरे उसका मुख्यधारा की भाषा से परिचय कराने से उसके मनोबल को इस बदलाव से एकाएक धक्का नहीं लगेगा।

हिंदी एवं क्षेत्रीय भाषा गोंडी के बीच के अंतर को पाटना : एकलव्य प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम

भारत के मध्य प्रदेश राज्य में विकसित हुआ यह कार्यक्रम इस पूर्वधारणा पर शुरू किया गया है कि एक बड़े भाग के बच्चों के लिए हिंदी द्वितीय भाषा है जिसमें उन्हें लिखना और पढ़ाना सीखना है, लेकिन उन्हें अन्य विषयों को भी, इसी भाषा जो उनके लिए अपरिचित है, में समझना होता है। वे सुविधावंचित बच्चे हैं। ये सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए तथा दूर-दराज़ इलाकों की पहली पीढ़ी के सीखने वाले होते हैं। यह कार्यक्रम इस बात को भी मानकर चलता है कि मध्य प्रदेश की ज़्यादातर कक्षाएँ बहुभाषिक हैं जिसमें अलग-अलग भाषायी पृष्ठभूमि के बच्चों को हिन्दी सीखनी होती है। इस संदर्भ में इस कार्यक्रम ने नायाब तरीका निकाला। इसने भाषा के सीखने को प्राथमिकता दी और पढ़ना सीखने के लिए इसे उसी संदर्भ में रखा। यह कक्षा में ज़ोर-ज़ोर से पढ़ने को तरजीह देता है, न कि चुपचाप अर्थ निकालने मात्र पर। इसने ऐसी विधियाँ ईजाद कीं, जिसमें बच्चा पढ़ते हुए संदर्भ के अनुसार नये शब्द के अर्थ अनुमान लगाकर सीखने का प्रयत्न करे। ये संदर्भ बच्चों के जीवन से जुड़े होते हैं। ऐसे संदर्भ में से एक है गोंडी या कोर्कू बोलने वाले बच्चे, जो एक ही क्षेत्र में रहते हैं। ये दोनों भाषाएँ अलग-अलग भाषा समूहों से संबंधित हैं। ये बच्चे आपस में एक-दूसरे की भाषा नहीं समझ सकते। ऐसे में हिंदी, जो क्षेत्रीय भाषा है, इनके बीच संपर्क का माध्यम बनती है।

एक बार तो इस कार्यक्रम में यह भी सोचा गया कि गोंडी या कोर्कू का पठन-पाठन देवनागरी लिपि में हो। किसी सामाजिक या राजनीतिक आंदोलन के अभाव में गोंड एवं कोरकस लोगों को यह कदम अपनी सामाजिक गतिशीलता के विरुद्ध लगा। भाषा सीखने-सिखाने के क्षेत्र में यह यात्रा, प्रयोग, चिंतन और समझौते की यात्रा थी, शिक्षकों के साथ उन तरीके के लिए जो प्रभावी थे। इस कार्यक्रम ने बच्चों के कुछ परिचित संदर्भों एवं खेलों को समायोजित करने का भी प्रयास किया। हमने मौखिक अभ्यासों के लिए गोंडी भाषा की सामग्री को भी शामिल किया है। (खुशी-खुशी कक्षा-1)।

इस कार्यक्रम में भाषा सीखने के और पढ़ना सीखने के उपागम भाषा सीखने की स्वाभाविक प्रक्रिया की समझ पर आधारित हैं जिसका आधार अर्थपूर्ण और रुचिकर संदर्भों से सीखना है। इसके कारण यह आवश्यक हो जाता है कि हम पठन के नीचे से ऊपर के लगभग सार्वभौमिक उपागम से जिसमें कि वर्णमाला को शब्दों से पहले और शब्दों को पाठ्यवस्तु से पहले पढ़ाना सीखा जाता है, से उस उपागम की ओर जाएँ जिसमें ऊपर से नीचे संदर्भों से सीखने की प्रक्रिया होती है। पाठ्यवस्तु की भूमिका मौखिक संदर्भों के रूप में जिसमें कि कुछ शब्द और कुछ अक्षरों यहाँ तक कि वाक्यों को भी पहचानना होता है, पूरी प्रक्रिया को पूर्व-प्राथमिक स्तर के बच्चों के लिए बहुत ज़्यादा मूर्त और बोधगम्य बना देती है। वर्णमाला की ध्वनियों और प्रतीकों को बिना किसी संदर्भ के सीखना निश्चित रूप से ज़्यादा अमूर्त प्रयास है, उससे जिसमें चित्रों और प्रक्रियाओं के सहयोग के साथ पाठ्यवस्तु से अर्थ निकाला जाता है। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि पाठकों के लिए पाठ्यवस्तु के संदर्भ में कितना सुपरिचित है और उनकी भाषा भी कितनी आकर्षक है।

इस कार्यक्रम ने ऐसे कई सिद्धांत उत्पन्न किए जिसे किसी भी बहुभाषिक परिस्थिति में इस्तेमाल किया जा सकता है। इस कार्यक्रम में अर्थपूर्ण एवं समृद्ध विषय वस्तुओं के चुनाव पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया जिससे सीखने वाला खुद को जोड़ सके तथा आनंद प्राप्त कर सके जैसे कहानियाँ, कविता, कहावतें आदि। इस तरह के संदर्भ भाषा को जानने, पढ़ने के साथ-साथ व्याकरण को समझने में भी मददगार होते हैं। इसे कैसे किया जा सकता है - यह कार्यक्रम के द्वारा तैयार की गई सामग्री से स्पष्ट होता है - 'खुशी-खुशी', 'कहानी' और 'कविता संग्रह', अभ्यास-पुस्तिकाएँ 'पहले लिखो मज़ा करो' और सीखने के कार्ड तथा कविता पोस्टर। इस कार्यक्रम ने पुस्तकालय के प्रयोग को भी बढ़ावा दिया और दीवार-अखबार के अभ्यासों को भी मजबूती प्रदान की ताकि विभिन्न भाषा कौशल विकसित हो सकें। यह दूसरे संदर्भों में भी प्रयुक्त हुए हैं और आगे भी लिए जा सकते हैं।

पढ़ना सीखने एवं भाषा विकास के आरंभ बिंदु के रूप में स्थानीय एवं माँ की कहानियों का प्रयोग : ऋषिवैली कार्यक्रम

ऋषिवैली ग्रामीण शिक्षा कार्यक्रम का विकास आंध्र प्रदेश के चित्तौड़ ज़िले में किया गया है। इसका ज़ोर एक बहुस्तरीय, बहु श्रेणी और सीखने के संदर्भ पर होता है जो ज़्यादा लचीली एवं सामूहिक कक्षा व्यवस्था के पक्ष में है। इसके लिए शिक्षक के जागरूक प्रशिक्षण पर ज़ोर दिया जाता है। भाषा को सिखाने के लिए इसका बल मौखिक भाषा के विपुल भंडार को विकसित करने पर है। इसके तहत पंचतंत्र की कहानियों एवं ख़ासकर उन कहानियों को लिया जाता है जो बच्चों के माता-पिता सुनाते हैं एवं जिन्हें बच्चे लिख लेते हैं। इन्हें मम्मी/पापा की कहानियाँ कहा जाता है। सभी कहानियों में मम्मी एवं पापा का नाम एवं तसवीर होती है। बड़े बच्चे जिन कहानियों को लिखते हैं वे उन्हें स्कूल के बाहर पढ़कर सुनाते हैं। पंचतंत्र की कहानियाँ कक्षा में भी पढ़ी जाती है। जो कहानियाँ प्रचलित हो जाती हैं उन्हें कठपुतली खेल में भी खेला जाता है जो कि इस क्षेत्र की परंपरा है।

माता-पिता की तथा पंचतंत्र की प्रसिद्ध कहानियाँ पठन के कौशल सीखने के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं। ये कहानियाँ विभिन्न तरीकों से उपयोगी होती हैं। यह समुदाय को स्कूल के ज़्यादा नजदीक लाती हैं। (इस कार्यक्रम में यह प्रयास किया गया कि कई तरीकों से जैसे माताओं की समिति द्वारा, स्वास्थ्य कार्यक्रमों द्वारा तथा प्राकृतिक बगीचों द्वारा समुदाय को जोड़ा जाए)। बच्चे इन कहानियों को रुचि से पढ़ते हैं । क्योंकि कहानी का संदर्भ उन्हें पता होता है तथा कहने वाले को भी वह पहचानते हैं। (जैसे एक बंदर डकैत की लूट से छीनकर कुछ सोने के सिक्के

एक छोटी गरीब लड़की को देता है और जब पकड़ा जाता है तो डकैत से छूटने के लिए एक सफल योजना भी बना लेता है।)

यह प्रयोग वास्तव में तेलुगु में शुरू हुआ लेकिन ऋषिवैली ग्रामीण शिक्षण केंद्र विभिन्न राज्य सरकारों एवं अन्य संगठनों जिसमें कथाकार, स्थानीय कलाकार के साथ-साथ बुद्धिजीवी एवं शिक्षक भी शामिल हैं, के साथ मिलकर इस भाषा विकास के अनुभव का विभिन्न भाषाओं में प्रयोग कर रहे हैं। अब तक इसका तमिल, मलयालम, कन्नड़ एवं हिंदी में प्रयोग हो चुका है। अभी तो इसका प्रयोग छोटे वैकल्पिक स्कूलों द्वारा ही हुआ है लेकिन भाषा के इस पहलू का सफल प्रयोग मुख्यधारा वाले स्कूलों में भी हो सकता है।

अंजली नोरोहन
एकलव्य
भोपाल

परिशिष्ट V

(प्रथम ड्राफ़्ट पर प्राप्त कुछ प्रतिक्रियाएँ। हमने इनके द्वारा उठाए गए मुद्दों में से अधिकांश को प्रस्तुत आधार पत्र में दिया है।)

प्रो. कविता पंजाबी

प्रिय प्रोफ़ेसर अग्निहोत्री
आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई थी। लेकिन कार्यक्रम के बाद थक-सी गई थी, इसलिए आपसे ज़्यादा देर तक बातचीत नहीं कर पाई। मैंने आपके पेपर को शुरू से अंत तक पढ़ा। मैंने बहुत कुछ इससे सीखा और इसे भविष्य में उपयोग के लिए फाइल में ज़रूर रखूँगी। चूँकि समय का दबाव है, इसलिए मैं दूसरे मुद्दों पर अभी फिलहाल कुछ नहीं कहने जा रही हूँ और हैदराबाद में भाषा और जेंडर पर शुरू की गई बहस पर लौटना चाहूँगी।

आपका पेपर उन कुछ पेपरों में से है जिसमें जेंडर के मुद्दे को उठाया गया है। यह खुशी की बात है, लेकिन संतोषप्रद नहीं। आपके ग्रुप में ज़्यादा जागरूक लोग हैं, मैं इसका भरपूर फायदा उठाते हुए कहना चाहूँगी कि जेंडर के संबंध में जो इशारे किए गए हैं उन्हें ज़्यादा विस्तार देना व स्पष्ट करना ज़रूरी है। इसका कारण है भाषा ज्ञान के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है और जेंडर-संबंधों में भी निर्णायक व प्रभावी भूमिका में होती है। लेकिन भाषा और जेंडर के संबंध के बारे में जानकारी का स्तर इतना निम्न है कि कम से कम पाठ्यपुस्तक लेखकों और शिक्षकों के लिए ज़्यादा स्पष्टीकरण व विस्तार में जाने की ज़रूरत है, ताकि वे उन बातों को समझ सकें जो इस पेपर के माध्यम से आप कहना चाहते हैं।

इसलिए हम अपने ग्रुप की कुछ सामग्री भेज रहे हैं ताकि इस पर विचार करके आप इसे अपने पेपर में जगह दें। जेंडर और भाषा के मुद्दे पर आप जो कुछ कहना चाह रहे हों, उसके अतिरिक्त यदि हमारे पेपर में कही गई बातों को आप जोड़ दें तो अच्छा होगा। क्योंकि भारतीय भाषाओं पर पेपर पढ़ने वालों की संख्या जेंडर वाले पेपर को पढ़ने वालों से निश्चित ही ज़्यादा होगी।

जेंडर के दृष्टिकोण से भाषा के विश्लेषण के क्रम में आपका समूह मजबूत तर्क करेगा ऐसी आशा है। फिर मिलने की उम्मीद के साथ।

कविता पंजाबी
अध्यक्ष
शिक्षा में जेंडर मुद्दों पर
राष्ट्रीय फोकस समूह

डॉ. जानकी राजन

प्रिय प्रो. अग्निहोत्री
राष्ट्रीय फोकस समूह के भारतीय भाषाओं के शिक्षण पर तैयार किए गए आधार पत्र को देखने के उपरांत यहाँ कुछ प्रतिक्रियाएँ भेज रही हूँ।

आधार पत्र अत्यंत सूचनाप्रद है और किसी भी योजनाकार, पाठ्यचर्या निर्माण करने वाले, पाठ्यपुस्तक लेखक और शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए महत्त्वपूर्ण दिशानिर्देश दे सकता है। यह आधार पत्र भारत और विश्व के किसी भी कोने में भाषा शिक्षण पर हुए अध्ययन के मामले में कम नहीं ठहरता। साथ में दी गई इतनी अच्छी संदर्भ सूची तथा भाषा तालिकाएँ महज भाषा पढ़ाए जाने के मामले में प्रशासनिक निर्णय लेने के लिए ही नहीं बल्कि एक बृहत्तर ढाँचा भी प्रस्तुत करती हैं, जो हमें संवेदनशील मुद्दों के प्रति आगाह करती हैं। ये तालिकाएँ स्कूलों में भाषा के चुनाव के लिए एक बड़ी कुंजी का काम करेंगी। कोई भी योजना संबंधी निर्णय यदि इन मापदंडों और साथ ही उस क्षेत्र के लोगों की डेमोग्राफ़ी को ध्यान में रखकर लिया जाए तो यह भाषा पर गंभीर बहसों को जन्म देगा जो भारत में कभी नहीं देखा गया, यहाँ तक कि त्रि-भाषा सूत्र को लेकर भी नहीं। यह पत्र भाषा शिक्षण से संबंधी बहुत सी बिखरी हुई चिंताओं को भी परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है जो कि आवधिक तौर पर सामने आती हैं और जिनके लिए भिन्न राज्य जो कार्यनीतियाँ अपनाते हैं उनका आधार उनकी वर्तमान सोच रहती है न कि विश्लेषणों से उभरा सूचित आधार।

इतना कहने के बाद मैं कुछ उन बातों की ओर ध्यान दिलाना चाहूँगी, साथ ही ऐसे सुझाव भी जिनसे हर रोज़ हमारा वास्ता रहता है। मैं उनमें से कुछ सामने रख रही हूँ और इनके प्रति गंभीरतापूर्वक सोचने के लिए विनम्र निवेदन करती हूँ :

1. भाषा के विभिन्न आयामों के बारे में 1.1 में चर्चा की गई है। इसके अलावा यह भी कहा गया है कि बचपन में भाषा का सीख जाना बाद में सीखने की क्षमता को प्रभावित करता है। साथ ही यह भी कहा गया है कि बिना भाषा सीखे या भाषा से परिचित हुए मस्तिष्क में विशेष प्रकार की 'न्यूरल' संरचनाएँ विकसित नहीं हो सकतीं। हम सभी जानते हैं कि हमारे देश में पूर्व प्रारंभिक बाल्यावस्था शिक्षा लगभग अनुपस्थित है। साथ ही स्कूल भी मुख्यत: बच्चे द्वारा घर में सीखी गई भाषा को ही तरजीह देते हैं। कई भाषाएँ हैं और कई तरह से बच्चों का पालन-पोषण भी होता है। सवाल यह है कि पहली कक्षा में ही कई तरह की भाषाओं को बोलने वाले जो बच्चे आते हैं, उनको एक साथ कैसे पढ़ाया जाए? साथ ही किसी भी भाषा के कई रूप होते हैं। हिंदी भाषा कई प्रकार की है इसी प्रकार तमिल भाषा भी कई प्रकार की है। फिर बात पालन-पोषण की भी है। घर में माता-पिता बच्चों को कैसे पालें इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। कई माता-पिता बच्चों से बहुत ही कड़ाई से पेश आते हैं। वे सोचते हैं कि बच्चों को ज़्यादा पूछताछ नहीं करनी चाहिए। उन्हें जो कहा जाए चुपचाप उसका पालन करें इत्यादि, यानी कठोर अनुशासन को उचित माना जाता है। ऐसे में बच्चे में खुद को अभिव्यक्त करने की भाषिक क्षमता विकसित नहीं हो पाती। आज्ञा पालन का भाव जन्म लेता है। कुछ माता-पिता उदार होते हैं। बच्चों को खुद को अभिव्यक्त करने की छूट होती है। हमने सुना है कि श्रमिकों के घर में चुप्पी की संस्कृति पाई जाती है। इन घरों से आने वाले बच्चे निश्चित ही घाटे में रहते हैं जबकि पेशेवर वर्ग में बच्चों को बचपन से ही स्कूल जाने से पहले ऐसा वातावरण मिलता है जहाँ वे भाषा सीखते हैं और तमाम तरह की रचनात्मक गतिविधियों में भाग लेते हैं। कई संस्कृतियों में सीधे बोलने की बजाय रूपकों का प्रयोग होता है जैसे, ''मैं शौचालय जा रहा हूँ'' इसको ऐसा कहने के बजाय कई जगह कहा जाता है, "जरा घर के पिछवाड़े से आ रहा हूँ।" इस तरह के अंतर से स्कूल कैसे निपटेगा?

2. शिक्षा के क्षेत्र में योजना बनाने वाले एक अजब तरह के अंतर्विरोध मे फँसे होते हैं। यूँ तो कई तरह के बच्चे हैं। जाति, धर्म, भाषा, लैंगिकता आदि के आधार पर न भी जाएँ और मोटे तौर पर दो ही तरह के बच्चों को लें, एक वे जो प्राइवेट स्कूलों में जाते हैं और दूसरे वे जो सरकारी स्कूलों में जाते हैं। इन दोनों ही स्कूलों के बच्चे दो अलग–अलग वर्ग और संस्कृति से होते हैं। प्राइवेट स्कूलों में आने वाले बच्चे लिखने तक की क्षमता हासिल किए हुए आते हैं जबकि आदिवासी संस्कृति से आने वाले बच्चे एक मजबूत मौखिक कौशल के साथ आते हैं। लेकिन इस कुशलता को वे महज कुछ संदर्भ में कुछ खास तरह से ही प्रयोग कर पाते हैं। सवाल है कि योजनाकार इन दो तरह के बच्चों की खाई के फ़ासले को कैसे पाटेंगे?
3. भाषा सीखने में लैंगिकता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पारंपरिक तौर पर स्त्रियाँ अलग तरह की भाषा का प्रयोग करती हैं और भागीदारी के स्तर पर भी गौण भूमिका निभाती हैं। आरंभिक अवस्था में इस समस्या से कैसे निपटा जाए ? कहा जाता है कि बाद की अवस्थाओं में लड़कियाँ भाषा का इस्तेमाल करने में लड़कों की तुलना में अच्छा प्रदर्शन करती हैं, लेकिन क्या यह सच है ? मेरे पूछने का मतलब यह है कि क्या लड़कियों में कोई जन्मजात क्षमता होती है अथवा समाज ही उन्हें प्रौद्योगिकी विषयों के स्थान पर मानविकी और भाषा जैसे विषयों को पढ़ने की ओर उन्मुख करता है। शायद लड़कियाँ भी बातचीत करने के लिए या संप्रेषण के लिए भाषा को सामाजिक तौर पर स्वीकृत माध्यम के रूप में भी इस्तेमाल करती हैं। किसी भी तरह की भाषा योजना को बनाते समय इन बातों का ध्यान रखा जाना ज़रूरी है।
4. बर्नस्टीन का कहना है कि स्कूल संरचनात्मक व प्रकार्यात्मक स्तर पर ही मध्यम वर्ग को ज़्यादा फ़ायदा पहुँचाने के लिए है। स्कूल की भाषा मध्यम वर्ग की भाषा का विस्तार होती है न कि श्रमिक वर्ग या हाशिए पर अवस्थित वर्ग की। स्कूल इसे कैसे सुलझाए, ख़ासकर जहाँ अभी भी सामंती सोच बनी हुई है वहाँ जाति/वर्ग के आधार पर शब्द घरों में प्रयुक्त होते हैं। क्या हम बच्चों को सामाजिक संरचना की इस विषमता भरी परिस्थिति से बाहर निकाल सकते हैं, विषमता जो भाषा से प्रभावित भी है और भाषा को प्रभावित भी करती है?
5. अच्छी ख़ासी शैक्षणिक पृष्ठभूमि वाले घरों में भाषाओं की अच्छी संपदा मिल जाती है जो इन घरों से आने वाले बच्चों को ज़्यादा क्षमता प्रदान किए होती है। उदाहरण के लिए, रूबी पायने का कहना है कि हम यदि समाज को तीन वर्गों में बाँटें – अमीर, मध्यम और श्रमिक वर्ग – और उनकी खासियतों का विश्लेषण करें तो हम पाते हैं कि कई बातों के अलावा भाषा एक महत्त्वपूर्ण सत्ता के रूप में काम करती है। पहले दोनों वर्गों के बच्चे अपने घरों में ही भाषा की विकसित परंपरा से काफ़ी कुछ सीख जाते हैं। सवाल है स्कूल श्रमिक वर्ग से आने वाले बच्चों के लिए किस तरह स्कूल औपचारिक भाषा विकसित करे?
6. दिल्ली के बच्चे एक विशेष समस्या से परेशान होते हैं : हरियाणवी बोली में जो "मात्रा" प्रयोग की जाती है वह हिंदी बोली की तुलना में काफ़ी भिन्न होती है। इसकी वजह से हरियाणवी बच्चे हिंदी में बहुत ही औसत प्रदर्शन कर पाते हैं। इस भिन्नता को पाटने के लिए योजना निर्माता किस तरह के उपाय करेंगे?
7. स्कूल में मानक भाषा का प्रयोग होता है। इसकी पैरवी करने वाले लोग उच्चतम न्यायालय को उद्धृत करते हैं, जिसमें कहा गया है कि सभी तकनीकी और वैज्ञानिक पदावली मानक स्तर की ही होनी चाहिए। क्या यह पाठ्यचर्या शुरू में तकनीकी शब्दों के बदले उनकी व्याख्या करने की सिफ़ारिश करेगी?
8. पूरी पाठ्यचर्या में भाषा का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। ऐसा पाया गया है कि भाषा की कक्षाओं में जो शब्द

सिखाए जाते हैं या प्रयोग किए जाते हैं उनका दूसरे विषयों जैसे – विज्ञान, गणित या समाज विज्ञान में प्रयुक्त भाषा से कोई रिश्ता नहीं होता। बच्चे कैसे उन जटिल तकनीकी शब्दों को जादू से सीखेंगे जिन्हें उन्होंने कभी सुना ही न हो ? ऐसा कहा जाता है कि हर एक विषय का अपना शब्दकोश होता है जो उस विषय को समझने व सीखने के लिए अनिवार्य होता है। लेकिन यदि बच्चा अभी विकास की ही अवस्था में हो तो इन विषयों की विशिष्ट ज़रूरत ही एकमात्र कारण नहीं होती बच्चे पर अपनी उस भाषा को लादे जाने का जिसे बच्चा समझ ही नहीं पाए। और इसके लिए तर्क दिया जाये कि क्या करें यह हमारी मजबूरी है। क्या भाषा समूह इस मामले में कोई कसौटी बना सकता है? मैं यहाँ तक कहना चाहती हूँ कि यदि विज्ञान के सिद्धांतों को उन परिभाषाओं के बिना नहीं पढ़ाया जा सकता जो पहले से ही निश्चित हैं (जो निश्चित ही वयस्कों के लिए विकसित किए जाते हैं), और ऐसे शब्दों से बने हुए हैं जिन्हें बच्चा नहीं समझ सकता है तो विज्ञान को चाहिए कि वह इन सिद्धांतों को बच्चे को पढ़ाने के लिए भाषा और मानविकी के लिए जगह छोड़ दे। कम से कम यहाँ बच्चों को वैज्ञानिक सिद्धांतों, कथाओं, मिथकों, कहानियों आदि को शामिल कर रोचक बनाया जा सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि विज्ञान अपने मानक तरीके को छोड़कर नए तरीके विकसित करे और भाषिक तरीकों को ज़्यादा तरजीह दे। क्या भाषा-शिक्षण को इस मामले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए?

9. किसी खास संस्कृति की भाषा अपने आप में परंपरा और सभ्यतागत स्मृतियों को सँजोए रखती है साथ ही कहावतों, मुहावरों, कविताओं, आदि को भी। मानक भाषा के ढाँचे में इन खज़ानों के लिए कोई जगह नहीं हो सकती है। क्या भाषा-पाठ्यचर्या कोई ऐसे उपाए सुझा रही है जो बच्चे की समृद्ध भाषा क्षमता को स्कूली पाठ्यचर्या में महत्त्वपूर्ण स्थान दे और 'प्रोजेक्ट' आदि के माध्यम से उन्हें अपनी संस्कृति से जुड़ने का अवसर प्रदान करे। मसलन पहली कक्षा से बारहवीं तक कहावतों, हँसी-मज़ाक, लोकगीत, और अन्य पारंपरिक स्रोतों को संग्रह करने की अनिवार्यता।

10. क्या कोई ऐसा तरीका है जिससे बच्चे विभिन्न अवस्थाओं में जो शब्द प्रयोग करते हैं, उनको योजनाकारों और पाठ्यक्रम बनाने वालों को उपलब्ध कराया जाए? उदाहरण के लिए, ऐसा कहा गया है कि पहली कक्षा में प्रवेश करने वाले बच्चे लगभग तीन हज़ार शब्दों को विश्वासपूर्वक प्रयोग करने की क्षमता लिए होते हैं। क्या यह सच है? आगे की कक्षाओं में इन्हें कैसे इस्तेमाल किया जा सकता है? क्या कोई तरीका है जो इन्हें लिखित की ओर बढ़ने में सहायक हो ?

11. भाषा और संज्ञान : हमें कहा गया कि ये साथ-साथ विकसित होते हैं और इन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता। यही वजह है कि उच्च स्तर की परीक्षाओं में भाषिक क्षमताओं की जाँच अनिवार्य होती है। अगर ऐसी बात है तो क्यों न हम इसे उच्च माध्यमिक स्तर पर आजमा कर देखें ताकि बच्चे, माता-पिता और शिक्षक सभी समझ सकें कि यह कहाँ तक सच है?

12. व्याकरण: माध्यमिक स्तर के बाद होने वाली चुनाव परीक्षाओं में व्याकरण को लेकर हम एकमत नहीं हैं। कुछ कहते हैं कि व्याकरण को अपने आप में अलग रूप से जानना ज़रूरी है और इसकी जाँच होनी चाहिए। दूसरों का मानना है कि व्याकरण को जानना भर महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि महत्त्वपूर्ण है उसके उपयोग की क्षमता का होना। क्या यह आधार पत्र इस मामले में कोई दिशा निर्देश दे सकता है?

13. अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य में जिस तरह की साहित्यिक आलोचना प्रचलित है वह भारतीय भाषाओं और साहित्य

में देखने को नहीं मिलती। प्राय: साहित्य को ग्रंथों की भाँति पढ़ाया जाता है । क्या यह आधार पत्र इस दिशा में ज़्यादा प्रकाश डालने जा रहा है कि पाठ्यपुस्तकों में प्रयुक्त भाषा और साहित्य को बच्चों को पढ़ाए जाने की क्या वज़ह है? आखिर किसलिए उन्हें साहित्य पढ़ाया जाता है ? उनसे क्या उम्मीद की जाती है?

14. हालाँकि इस आधार पत्र में सौंदर्यात्मकता और संवेदनशीलता पर बात की गई है। लेकिन योजनाकारों को यह ध्यान में रखना होगा कि भाषा का प्रयोग कैसे किया जाए जो हममें एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता और संवेदना को जन्म दे। सौंदर्यबोध को अलग से विकसित किया जा सकता है लेकिन संवेदना के बिना यह संभव नहीं है। यह पत्र इस दिशा में क्या सोचता है?

डॉ. जानकी राजन
एस.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

कुमार शहानी

प्रिय रमाकांत और साथियो

भारत में भाषा-शिक्षण और भाषा-विकास की समस्याओं पर इतना अच्छा आधार पत्र तैयार करने के लिए धन्यवाद। साथ में बधाई भी।

मैं आपके द्वारा उठाए गए कुछ मुद्दों का पूरा समर्थन करना चाहूँगा

1. मैं इस बात से सहमत हूँ कि भाषा यथार्थ को गढ़ती है और साथ ही इसका अवयव भी होती है। यह हमारे सोचने के तरीके में किस कदर अंतर्निहित है। भतृहरि के समय से ही, उदाहरण के लिए गुजरात के एक किसान ने भी मेरे कुछ विद्यार्थियों को कहा की निम्न कोटि की वात (बोली, साँस) वातावरण को दूषित करती है। ऊपर दिए गए का निहितार्थ हमारे संज्ञानात्मक दृष्टिकोणों के लिए जरूरी है जो हमारे ऐतिहासिक अनुभवों को मजबूत कर सके और तथ्यात्मकता, विज्ञान, कला आदि के संबंध में हमारे जिन विचारों ने कई सालों से और बीती कई सभ्यताओं के दौरान अधिकार जमा रखा है, उन्हें चुनौती दे।
2. हमारे संज्ञानात्मक लचीलेपन को विकसित करना अत्यंत ज़रूरी है। ऐसा किसी विशेष यांत्रिक कारण या बी. आई. सी. एस. के लिए ही नहीं, बल्कि पूरी धरती पर – सभी के जीवन के अस्तित्व रक्षा हेतु 'अक्षर' – चाहे वह लिखा गया हो या बोला हुआ – संदर्भों, परिघटनाओं आदि के संबधों से प्रसंग लेकर हमारे अनुभवों को समृद्ध बनाने की दक्षता रखता है और अमरत्व की स्थिति प्राप्त कर लेता है। महज कहीं कुछ है, उसका प्रंसग। चूँकि कहीं कुछ ऐसा है जो हमेशा ही बदल रहा है, जीवंत है, आकार ले रहा है। जब तक कि हम उसे ग्रहण करें और अपनी संरचनाओं में शामिल करें यह 'अक्षर' संदर्भ और रूप भी बदल लेता है।
3. बच्चे भाषा को सबसे ज़्यादा जीवंतता व खेल-खेल में प्रयोग करते हैं, यह भाषाविदों का कहना तो है ही, हम भी हर रोज़ ऐसा होता देखते हैं।
4. यथार्थ से जो रिश्ता भाषा व गणित का है, वही रिश्ता सभी कलाओं और साहित्य का है।
5. मीडिया में मानवीय कल्पनाओं को विस्तार देने की क्षमता है, लेकिन अंततः राज्य और बाज़ारी ताकतें ही इसे नियंत्रित करती हैं। यह हमें केवल संज्ञानात्मक स्तर पर ही नहीं वरन् हमारे बोधात्मक संकायों को भी (जो जीवन के उद्‌भव के समय से ही सभी जीवों में कई लाख वर्षों से विकसित हो रही है) संवेदनहीन बनाने पर तुला हुआ है। आज जेंडर, सत्ता, अस्मिता आदि प्रश्नों को लेकर भाषा का काफ़ी गलत इस्तेमाल हो रहा है। पश्चिम में इसका परिणाम यह हुआ कि पहले से ही कमज़ोर होते वार्तालापों में भाषा ज़्यादा से ज़्यादा डिकोडिंग करने तक सिमट गई है।
6. बहुभाषिकता भाषा और संस्कृति के उन सभी पक्षों के लिए, जीवंत, जनतांत्रिक व दृढ़ प्रतिरोध का काम कर सकती है, जो उसके विकास के लिए रुकावट बनते रहे हैं, कभी सर्वदेशीय सार्वभौम प्राधान्य क्षेत्रीय भाषा को वर्चस्वता का दर्ज़ा देकर, तो कभी किसी स्थानीय ताकतवर भाषा की वर्चस्वता घोषित करके।

भारतीय संविधान द्वारा प्रस्तावित लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयास के लिए मैं भविष्य की ओर देखता हूँ, तो राह धुँधली ही नजर आती है। जिसका कारण, नये रूप में बढ़ता औपनिवेशीकरण और उपभोक्ता वस्तुओं का हमारी आँखों पर पर्दे के रूप में छा जाना है जो कल्पनात्मकता, व्यापकता एवं सम्यक चिंतन/कार्यकलाप को लगभग कुंद कर रही है। प्रत्येक बच्चे में ये सभी पक्ष मौजूद होते हैं। हम उन्हें बचा सकते हैं यदि कदम-कदम पर फैले प्रचारों की, मिथकों की काट रख सकें। सभी तरह के बहानों के प्रदर्शन की आवश्यकता है। यदि हमें सबसे ज़्यादा हिंसात्मक क्रूर बलों से छूटना है और साथ ही सकारात्मक कार्यवाही से समर्थन को भी हटाना होगा। इंकास ने मासूमियत के

साथ बिना शक के बंदूकों के आगे हार मान ली जो उनकी नैतिकता (प्रदान की गई) के साथ-साथ रही। बचे हुए अमेरिकी भारतीय भी अतीत के गर्त में डाल दिए गए। अफ्रीका ने गुलामी के दौर में संसार को अपने जीवन और सभ्यता के महानतम खज़ाने दे दिए। थाईलैंड में सबसे ज़्यादा निर्यात-कमाई का आज लगभग 17 प्रतिशत, कहा जाता है कि पेडोफिलीया से प्राप्त होता है। भारत को चेतावनी मिल चुकी है कि इसे महिलाओं और बच्चों के व्यापार के दुष्परिणाम झेलने पड़ेंगे।

इन सभी के संदर्भ में हमें अपने शिक्षकों को और बच्चों को औपचारिक एवं अनौपचारिक वक्ता बनाने हेतु एक जैसा ही पोषण देने की आवश्यकता है – शिक्षा, संस्कृति, शोध और सृजनात्मकता के सभी स्तरों पर। जिस तरह स्वदेशी आंदोलन ने कुछ भौतिक वस्तुओं का बहिष्कार किया था, उसी तरह हमें भी 'अमूर्त' वस्तुओं को बहिष्कृत करना सीखना चाहिए। इसके लिए ज़रूरी है कि हम शिक्षाशास्त्र से प्रश्न पूछते रहें, न कि जवाब दें। इसलिए मैं शिक्षकों और शिक्षार्थियों के लिए पूरी सुविधाओं की उपलब्धता को समर्थन का प्रस्ताव देते हुए यह भी कहना चाहूँगा कि हमें सोचना चाहिए कि क्यों कुछ भाषाएँ कुछ दृश्य-धारणाएँ, संगीत रूप, ईडियम आदि विलुप्त हो गए। पाली भाषा को ही लीजिए इसने हमें विचारों की कितनी समृद्ध परतें दीं जिन्हें हमने खो दिया। ऐसा देश जहाँ यह सत्य माना जाता है कि यहाँ बहुत सारे मुसलमानों का धर्मनिरपेक्ष घर है और शायद अरबी देशों के साथ सबसे लंबे और लगातार व्यावसायिक संबंध रखता आया है, वहाँ अरब भाषा को अपनी एक शास्त्रीय भाषा कहने का विरोध क्यों किया जाता है? संस्कृत के शिक्षकों की संख्या भी दिन-ब-दिन कम होती जा रही है। जो वहाँ हैं वे क्षेत्रीय पृष्ठभूमि पर इसके निरूपण के लिए लड़ाई करते हैं। इसे आधुनिक और सहज पहुँच वाली भाषा बनाने की वेदना में कुछ शिक्षक इसकी दोहरी अवनति के मुद्दे पर हार मान लेते हैं।

यह तो ऐसा ही है जैसे माली अपने बगीचों के पौधों के नाम नहीं जानते हैं। यहाँ तक कि 'कदम' के पेड़ का भी नहीं जिसकी शाखाओं पर कृष्ण गोपियों के वस्त्र टाँग देते थे। पुरी, बनारस, चेन्नई और त्रिचि के बीच की भाषिक असहिष्णुता एक दुख और हास्य के मिले-जुले स्वाँग की तरह है जहाँ विदूषक स्वयं ही सारी-भूमिकाएँ निभाता है।

कुमार शहानी
फिल्म निर्देशक, मुंबई